Con. 3. VII.10.48
350

अंक 7
संख्या 10

सोमवार
22 नवम्बर
सन् 1948 ई.

भारतीय विधान-परिषद्

के

वाद-विवाद

की

सरकारी रिपोर्ट

(हिन्दी संस्करण)

विषय-सूची

पृष्ठ

1. विधान का मसौदा–(*जारी*) 657
   [अनुच्छेद 30-ए, 31 तथा 31-ए पर विचार]

भारतीय विधान-परिषद्

सोमवार, 22 नवम्बर सन् 1948 ई.

भारतीय विधान-परिषद् की बैठक कांस्टीट्यूशन हाल, नई दिल्ली में प्रातः 10 बज कर 10 मिनट पर उपाध्यक्ष (डा. एच.सी. मुकर्जी) के सभापतित्व में प्रारम्भ हुई।

अनुच्छेद 30-ए—(*जारी*)

***उपाध्यक्षः** इससे पहले कि हम आज की कार्यवाही आरम्भ करें मैं परिषद् से क्षमा मांगता हूं कि मुझे विलम्ब हो गया। किन्तु मैं यह भी कह दूं कि यह मेरी किसी गलती के कारण नहीं हुआ।

अब हम नए अनुच्छेद 30-ए पर वाद-विवाद पुनः आरम्भ करेंगे क्या कोई सदस्य संशोधन संख्या 872 पर बोलना चाहते हैं?

***श्री महावीर त्यागी** (संयुक्तप्रांत : जनरल): श्रीमान्, उस दिन मैं इस संशोधन पर विस्तार से बोला था, और मैंने इस संशोधन के प्रस्तावक से निवेदन किया था कि वे कृपया इस बात को मान लें कि उस समय इस प्रश्न पर वाद-विवाद स्थगित हो जाये और जब संशोधन संख्या 999 पर विचार आरम्भ हो तब इस पर भी विचार कर लिया जायें। मुझे आशा है कि यदि माननीय प्रस्तावक सहमत हों, तो यह अच्छा रहेगा कि आप इस विषय पर अभी पर्यालोचन स्थगित करने की कृपा करें और उचित समय पर इसे लिया जाये।

***श्री अज़ीज अहमद खां** (संयुक्तप्रांत : मुस्लिम): श्रीमान्, इस संशोधन का सुझाव मि. करीमुद्दीन ने रखा था, जो आज यहां उपस्थित नहीं हैं। पर इसके साथ ही इस संशोधन को उन्होंने और मैंने दोनों ने ही भेजा था और उन्होंने मुझे स्पष्टतया अधिकार दिया था कि मैं निवेदन करूं कि यदि इस विषय पर कोई समझौता

---

*इस चिह्न का अर्थ है कि यह अंग्रेजी वक्तृता का हिन्दी रूपान्तर है।

[श्री अज़ीज अहमद खां]

हो जाये अथवा माननीय कानून-मंत्री द्वारा आश्वासन दे दिया जाये कि वे इस संशोधन के सिद्धान्त का विधान में कहीं समावेश करने के लिये तैयार हैं, तो यह संशोधन वापस लिया जा सकता है और मैं ऐसा करने के लिये तैयार हूं। अतः मैं इस प्रश्न को आपके निर्णय पर छोड़ने के लिये सर्वथा तैयार हूं कि जब तक हम धारा 38 पर विचार आरम्भ न करें तब तक इस संशोधन पर पर्यालोचन स्थगित कर दिया जाये।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर** (बम्बई : जनरल): मैं पूर्णतः नहीं समझा हूं कि इसका आशय क्या है, पर यदि इसका सम्बन्ध नशाबन्दी से है...

***उपाध्यक्षः** हां।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** तो, मेरे और श्री त्यागी के बीच तय हो चुका है कि वे अनुच्छेद 38 में एक संशोधन का प्रस्ताव करेंगे और मेरा विचार उनके संशोधन को स्वीकार करने का है। अतः इस विषय को तब तक के लिये स्थगित कर दिया जाये जब तक कि हम अनुच्छेद 38 पर विचार आरम्भ न करें।

***उपाध्यक्षः** तब हम अगले संशोधन संख्या 873 को लेंगे।

श्री बसन्तकुमार दास (पश्चिमी बंगाल : जनरल): श्रीमान्, मैं इसको पेश नहीं कर रहा हूं।

***उपाध्यक्षः** अगला संशोधन संख्या 874 है।

***श्री राज बहादुर** (संयुक्तराज्य मत्स्य): उपाध्यक्ष महोदय, मैंने इस संशोधन की सूचना इसलिये दी थी कि मुझे यह बात दिखाई दी कि प्रारूपित संविधान में ऐसे प्रावधान नहीं हैं, जिनसे हमारे देश के उन प्रदेशों के लोगों को, जो कि आजकल जागीरदार और सामन्तशाहियों के नियंत्रण तथा कुन्बे में हैं, मामूली न्याय मिल सके अथवा उनको भारतीय संघ के शिष्ट तथा आत्मसम्मान प्रेमी नागरिकों

की हैसियत से जीवित रहने मात्र की सुविधा प्राप्त हो सके। मैं परिषद् का ध्यान उन दुर्भाग्यपूर्ण परिस्थितियों की ओर आकर्षित करना चाहता हूं, जिनसे सहानुभूति और करुणा जाग उठती है—वे लोग इन्हीं परिस्थितियों में रह रहे हैं। पर ऐसा करने से पहले मुझे अपना संशोधन पढ़ देना चाहिये। संशोधन इस प्रकार है:

''कि अनुच्छेद 30 के पश्चात् निम्न नया अनुच्छेद 30-ए जोड़ दिया जाये:

'30 ए. राज्य सामन्तशाही को किसी रूप में मान्यता नहीं देगा, और भारत के प्रदेश में कोई मनुष्य जागीरों या मुआफ़ी-भूति की श्रेणियों में आने वाली किसी सम्पत्ति के आधार पर किसी विशेष अधिकारों या हितों का अधिकारी नहीं होगा।''

कई बार इन जागीरदारों और इन सामन्तशाही जागीरों को जमींदारों और जमींदारियों की तरह समझ लिया जाता है। मेरा निवेदन है कि अपनी कल्पना, उत्पत्ति तथा प्रवृत्ति के सम्बन्ध में ये दोनों एक दूसरे से सर्वथा भिन्न है। वास्तव में इन दोनों में कोई समानता या सादृश्य है ही नहीं। जागीरदारों का आरम्भ भूतकाल के इतिहास में है। वे रियासतों के कुछ राजपरिवारों से उत्पन्न हुए हैं। दूसरे शब्दों में वे इन परिवारों के वंशज हैं। उन्हें सर्वथा कुछ भी धनराशि दिये बिना ही अपनी जागीरों और एस्टेटों के स्वामी बने रहने का अधिकार है, या यदि वे कुछ थोड़ी सी रकम देते भी हैं, तो वह उस सरकार या रियासत को देते हैं। जिसके कारण वे जागीरदार बने हैं। उन्हें स्वतंत्र न्यायाधिकार है। कई स्थानों पर तो उन्हें आयात-निर्यात-कर लगाने का भी अधिकार है। कई अन्य स्थानों पर उन्हें पृथक पुलिस-दल रखने का भी अधिकार है। वे बिक्री-कर भी लगाते हैं। उनका उत्तराधिकार सदा ज्येष्ठाधिकार के सिद्धान्त पर होता है। अत: वे जिस रियासत में होते हैं उनके समक्ष और केन्द्रीय सरकार के समक्ष, उनकी स्थिति सर्व-सत्ताधारियों की सी है। अतएव मैं यह निवेदन करना चाहता हूं कि जमींदारों और सामन्तों में कोई समानता नहीं है। अपने लोगों पर उनके अधिकार और प्राधिकार लगभग असीमित हैं। वे अपने अधीनस्थ किसानों से अत्यधिक लगान

[श्री राज बहादुर]

लेते हैं। सब जानते हैं कि वे बेगार अर्थात् बलात्श्रम लेते हैं—केवल खेती सम्बन्धी साधारण प्रयोजनों के निमित्त ही नहीं, वरन् निम्न कोटि के और अपमानजनक कार्यों के लिये भी। एक और बात है जो मानवता मात्र के लिये अपमानजनक है, वह यह है कि वे विवाहों या अन्य अवसरों पर 'लागबाग' नामक कर लेते हैं और यह भी कि वे कुछ अपमानजनक सामाजिक प्रतिबंध लगाते हैं, जैसे कि कई स्थानों पर वे अपने किसानों और रैयत को अपनी उपस्थिति में घोड़े पर चढ़ने नहीं देते। यदि बारात जाती हो तो वर घोड़े पर नहीं बैठ सकता, उनकी रैयत में महिलाओं को चांदी के आभूषण भी पहनने की आज्ञा नहीं होती। कई स्थानों पर तो छतरी तक रखने का निषेध है। अतः मैं परिषद् का ध्यान इस ओर आकर्षित करता हूं कि यदि स्वतंत्र भारत में ऐसी स्थितियां रहीं और उनको सहन किया गया तो इसका अर्थ स्पष्टतया यह होगा कि लोगों को प्रजातंत्र और स्वतंत्रता से वंचित किया जा रहा है। इसी कारण जब हम इन लोगों को सम्बोधित करते हैं और कहते हैं कि 'स्वराज आ गया है' तो वे शून्यता से हमारे मुख की ओर देखते हैं। वे इस पर विश्वास नहीं करते कि स्वराज वास्तव में आ गया है और हम अपने आपको एक विचित्र स्थिति में पाते हैं। यह सत्य है कि अब रियासतों में प्रजातंत्र स्थापित हो जाने से रियासतों में, लोकप्रिय मंत्रिगण कार्य कर रहे हैं, किन्तु कुछ रियासतों में, जहां कि जागीरें अथवा सामन्तशाही एस्टेटें हैं, कुछ मिश्रित सी सरकारें और मंत्रिमंडल हैं तथा हमारे लोकप्रिय मंत्री इन दलित और पीड़ित लोगों की सहायता करने में असमर्थ हैं।

यदि हम इस समस्या पर दूसरे दृष्टिकोण से विचार करें, तो हम यह भी देख सकते हैं कि हमारे विधान में तीन प्रकार के राज्य अथवा इकाइयां हैं। पहले गवर्नरी प्रांत, दूसरे चीफ कमिश्नरी प्रांत और तीसरे वे रियासतें जो संघ में प्रवेश कर चुकी हैं। पर यह स्पष्ट है कि यह सामन्तशाही जागीरें, जिन्हें अपनी जनता पर सर्वोच्च सत्ता के समान अधिकार हैं, स्वयं एक भिन्न श्रेणी हैं। अतः यह केवल उचित ही होता कि इन सामन्तशाही जागीरों के लोगों को सामाजिक, न्याय, स्वतंत्रता और प्रजातांत्रिक स्वराज्य प्राप्त कराने के लिये इस विधान में कुछ व्यवस्था होनी चाहिये थी। दुर्भाग्य से ऐसी व्यवस्था नहीं हैं मैंने जिस संशोधन की सूचना

दी, उससे यही सरल प्रश्न उत्पन्न होता है कि आया इन लोगों की न्यूनतम स्वतंत्रता का आश्वासन देने के उद्देश्य से हमारे इस विधान में कुछ व्यवस्था होनी चाहिये या नहीं। जहां तक विधान के मसविदे का सम्बन्ध है, हमें यह आश्वासन दिया गया है कि समय आने पर, या कदाचित इस विधान के मसविदे पर विचार समाप्त होने से पूर्व रियासतों की स्थिति भारत संघ की शेष इकाइयों के समान बना दी जायेगी। पर इस समय विधान के मसविदे में एक ओर विद्यमान रियासतों या रियासत-संघों और दूसरी ओर प्रान्तों के प्रबन्ध के लिये जो व्यवस्थायें रखी गई है, उनमें सुनिश्चित रूप से अन्तर है। यह अन्तर इस हद तक है कि रियासतों के लोग अपने मूल अधिकारों की रक्षा के लिये भी सर्वोच्च न्यायालय में नहीं पहुंच सकते। यदि आप कुछ विषयों के सम्बन्ध में अपील करना चाहे तो आपको ऐसा करने के लिये एक विशेष कार्यप्रणाली को काम में लाना होगा और उस कार्य-प्रणाली से हमारे लिये यह भी कठिन हो जायेगा कि हम अपने अधिकारों को भी सर्वोच्च न्यायालय द्वारा प्रमाणित करा सकें। मैं परिषद् के समक्ष यह प्रश्न इसलिये रखता हूं कि मेरा ख्याल है कि परिषद् इस पर ध्यानपूर्वक विचार करेगी। मैं अपने संशोधन को प्रस्तुत करने के लिये विशेष उत्सुक नहीं हूं। मैं जिस बात के हेतु विशेष उत्सुक हूं वह यह कि जब मैं अपने निर्वाचन-क्षेत्र को वापस जाऊं, तो मैं शुद्ध अन्तःकरण से लोगों के समक्ष जा सकूं। मैं जानना चाहता हूं कि यदि वे मुझसे पूछें कि ''आपने हमारे लिये, जो कि इन सामन्तशाही स्वामियों की सत्ता से इतनी बुरी तरह पीड़ित हैं, क्या किया है'' तो मैं उन्हें क्या उत्तर दूं? मैं इस परिषद् से यह उत्तर मांगता हूं। मेरा उद्देश्य यह नहीं है कि किसी व्यर्थ या अनावश्यक संशोधनों द्वारा विधान के मसविदे पर उचित रूप से विचार करने के कार्य में विलम्ब कराऊं; पर मेरा निवेदन है कि इस परिषद् को उन उत्पीड़ित लोगों की सहायता करनी चाहिये और इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिये हमारे विधान में समुचित व्यवस्था होनी चाहिये।

***उपाध्यक्षः** मैं नहीं समझ सका हूं कि यह संशोधन नियमित रूप से उपस्थित किया गया है, या नहीं।

***श्री राज बहादुरः** मैंने इसे नियमित रूप से नहीं रखा है। मैं केवल इस विषय पर बोला हूं जिससे कि परिषद् का ध्यान इस ओर आकृष्ट हो जाये।

***श्री एच.वी. कामत** (मध्यप्रांत तथा बरार : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, यह बहुत दुर्भाग्य की बात है कि इस विषय से सम्बन्धित कई संशोधन इस संशोधन-सूची में यत्र-तत्र बिखरे हुये हैं। यह बहुत अच्छा होता यदि ग्राम-पंचायत सम्बन्धी यह संशोधन एकत्र किये जाते और सूची में इसी विधि से रखे जाते। पर दुर्भाग्य से ऐसा नहीं है, किन्तु मुझे वह इसलिये रखना पड़ रहा है क्योंकि यह संशोधन कार्यावलि में है और मैं इस संशोधन को पेश न करके यह भ्रम उत्पन्न करना नहीं चाहता कि मैं उस बात से पीछे हट गया हूं, जो विधान के मसौदे पर विचार करने के सम्बन्ध में डा. अम्बेडकर के प्रस्ताव पर बहस के समय मैंने कही थी। यह देख कर मुझे प्रसन्नता है कि मेरी धीमी आवाज को इस परिषद् में मेरे अनुभवी और वृद्ध सहयोगियों के प्रबल समर्थन के कारण बल मिला है और मुझे हर्ष है कि इस विषय पर अनेक संशोधन आये हैं। श्रीमान्, यदि आपकी ऐसी इच्छा हो तो मैं इस संशोधन को अभी पेश कर दूंगा तथा आपसे निवेदन करूंगा कि जब तक इस विषय पर अन्य संशोधन विचारार्थ प्रस्तुत न किये जायें या सहमति से कोई संशोधन उपस्थित न हो, तब तक आप इस संशोधन पर विचार स्थगित कर दें। जैसी भी स्थिति होगी तथा इस विषय पर जो भी संशोधन परिषद् द्वारा स्वीकृत होगा, उसके पक्ष में अन्य संशोधन वापस ले लिये जायेंगे और बाद में मेरा संशोधन भी वापस ले लिया जायेगा; पर इस समय जैसी स्थिति है, उसमें मेरे पास इसके अतिरिक्त कोई और उपाय नहीं है कि मैं इस संशोधन को परिषद् के सामने रखूं। मैंने डा. अम्बेडकर के प्रस्ताव पर अपने भाषण में जो कुछ कहा था, अब मैं उसकी पुनरावृत्ति नहीं करना चाहता। मैं केवल यही आशा प्रगट करूंगा कि जब यूरोप एवं अमरीका जैसी पूंजीवादी परिषदात्मक लोकतंत्र प्रणाली तथा सोवियत संघ जैसी केन्द्रित समाजवाद-प्रणाली दोनों ही मानव के लिये शांति, सुख एवं समृद्धि प्रदान करने में असफल रही हैं, तब सम्भवत: हम भारत में एक नवीन राजनीतिक और आर्थिक ढांचे का निर्माण करने में सफल हो सकेंगे और कि हम महात्मा गांधी के पंचायत राज के स्वप्न को सत्य कर सकेंगे। उनकी विकेन्द्रित समाजवाद-पद्धति द्वारा हम मानवता तथा संसार को शांति एवं सुख के लक्ष्य तक पहुंचा देंगे।

अत: मैं आपकी अनुमति से इस संशोधन को नियमित रूप से पेश करता हूं, आपसे मैं व्यक्तिगत रूप से प्रार्थना करता हूं कि आप इसको तब तक के

लिये स्थगित कर दें जब तक कि इस अनुच्छेद में अन्य संशोधन पर्यालोचन के हेतु तैयार न हो जायें। मैं अपना संशोधन पढ़ता हूं:

''कि अनुच्छेद 30 के पश्चात् निम्न नया अनुच्छेद रख दिया जाये:

'30-ए. राज्य ग्राम-पंचायतों को अन्त में शासन-प्रबंध के आधारभूत अंग बनाने के उद्देश्य से ग्राम-पंचायतों के स्वस्थ विकास को प्रोत्साहन देने का प्रयत्न करेगा।' ''

***उपाध्यक्ष:** क्या डा. अम्बेडकर इस संशोधन पर कुछ कहना चाहते हैं?

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** मैं प्रस्ताव करता हूं कि यह मामला स्थगित रहे।

***उपाध्यक्ष:** मैं देखता हूं कि सूची में संख्या 927 का संशोधन श्री के. सन्तानम् के नाम में है। वह एक नया अनुच्छेद 31-ए जोड़ने के विषय में हैं यह और वह संशोधन साथ ही लिये जा सकते हैं। क्या परिषद् की यह इच्छा है कि ऐसा किया जाये?

अनुच्छेद 31

***उपाध्यक्ष:** तो हम अनुच्छेद 31 को लेंगे।

***एक माननीय सदस्य:** अनुच्छेद 30 अभी तक परिषद् के समक्ष नहीं रखा गया।

***उपाध्यक्ष:** यह रखा जा चुका है और स्वीकृत हो गया है।

अब परिषद् अनुच्छेद 31 पर पर्यालोचन करेगी।

श्री नज़ीरुद्दीन अहमद (पश्चिमी बंगाल : मुस्लिम): मैं प्रस्ताव करता हूं:

''कि अनुच्छेद 31 के खंड (1) में 'समानरूप से पुरुष तथा महिलायें' यह शब्द निकाल दिये जायें।''

जिस खंड पर विचार किया जा रहा है, वह यह है कि ''समान रूप से नर और नारी सभी नागरिकों को आजीविका के पर्याप्त साधन प्राप्त करने का अधिकार है।''

श्रीमान्, मेरा निवेदन है कि 'समान रूप से नर और नारी' यह शब्द अनावश्यक और व्यर्थ हैं। वास्तव में इस संशोधन की स्वीकृति से यह खंड इस प्रकार बन जायेगा: ''कि नागरिकों को आजीविका के पर्याप्त साधन प्राप्त करने का अधिकार

[श्री नज़ीरुद्दीन अहमद]

है''। श्रीमान्, मेरा निवेदन है कि 'नागरिक' शब्द की परिभाषा अनुच्छेद 5 के खंड (क) में दे दी गई है। वह परिभाषा सामान्य शब्दों में है और मेरे विचार में इसमें महिलायें भी सम्मिलित हैं। यह सर्वविदित है कि पुल्लिंग में स्त्रीलिंग भी आ जाता है। इस परिस्थिति में, जब कि हमने परिभाषा...

***पं. लक्ष्मीकांत मैत्रः** क्या माननीय सदस्य ने यह कहा है कि पुल्लिंग का अर्थ स्त्रीलिंग है?

***श्री नजीरुद्दीन अहमदः** व्याख्या में पुल्लिंग में स्त्रीलिंग सन्निहित है। अनुच्छेद 5 (क) में 'प्रत्येक व्यक्ति' शब्द है, उनमें निस्संदेह उसका अर्थ पुल्लिंग और स्त्रीलिंग भी है। अतः क्योंकि नागरिक शब्द को सुनिश्चित परिभाषा कर दी गई है और वह पारिभाषित शब्द 'नागरिक' इस अनुच्छेद में प्रयुक्त हुआ है, मेरे विचार में 'समान रूप से नर और नारी' यह शब्द जोड़ना अनावश्यक है। यदि हमें यह स्पष्ट करना पड़े कि कोई कानून समान रूप से नर और नारियों पर लागू होगा और हमें यह बात प्रत्येक स्थान पर लिखने के लिये बाध्य होना पड़े तो इन शब्दों को कई स्थानों पर अनावश्यक ही प्रयोग करना होगा। यद्यपि मैं इस सिद्धान्त से सहमत हूं कि जाति या मत, लिंग या वर्ण के भेद के बिना सभी नागरिकों को समानाधिकार होंगे, किन्तु इन शब्दों को रखने की आवश्यकता नहीं है।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** श्रीमान्, मैं इस संशोधन का विरोध करता हूं।

***श्री महावीर त्यागीः** श्रीमान्, मुझे एक सुझाव देना है। अनेक ऐसे संशोधन हैं जो भाषा सुधार या शब्द परिवर्तन के संबंध में हैं। उनमें भावान्तर या एतद् संबंधी अनुच्छेद के अर्थ के विषय में कोई सुझाव नहीं है। ऐसी स्थिति में क्या मैं यह सुझाव दूं कि उन सबको एकत्र कर लिया जाये। फिर आप एक समिति नियुक्त कर दें, जिसे यह सब संशोधन विचारार्थ और निर्णय करने के लिये भेज दिये जाये। यदि यह कर दिया जाये तो परिषद् का बहुत सा समय बच सकता है जिसमें अत्यावश्यक और महत्त्वपूर्ण संशोधनों पर विचार किया जा सकता है।

***उपाध्यक्षः** मैं इस सुझाव पर चलने के लिये तैयार हूं, यदि परिषद् की यही इच्छा हो। सम्भवतः हम इस सुझाव पर बाद में विचार करेंगे, दो तीन दिन बाद।

***श्री लोकनाथ मिश्र** (उड़ीसा : जनरल): क्या इसका यह अर्थ है कि इन प्रस्तावों पर विचार स्थगित हो गया?

***उपाध्यक्ष:** नहीं। हम विचार स्थगित क्यों करें? हम इस विषय में तत्काल ही मत ले सकते हैं और किसी निर्णय पर पहुंच सकते हैं।

***प्रो. के.टी. शाह** (बिहार : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, श्रीमान्, मैं प्रस्ताव करता हूं:

''कि अनुच्छेद 31 के खंड (1) में,

'कि नर ओर नारी सभी नागरिकों को समान रूप से...पर्याप्त...अधिकार हों' इन शब्दों के स्थान पर 'प्रत्येक नागरिक को....पर्याप्त...अधिकार हों' यह शब्द रख दिये जायें।' ''

श्रीमान्, परिषद् के समक्ष यह प्रस्ताव रखते हुए सर्वप्रथम में चाहता हूं कि मेरी इस बात को समझ लिया जाये कि यह संशोधन केवल भाषा में सुधार करने का प्रयत्न ही नहीं है। मैं स्वयं को अंग्रेजी भाषा का प्रमाणित विद्वान नहीं कहता और इस भाषा की विशेष रचना शैली के रहस्यों में तो मैं और भी कम प्रवीण हूं। मैं इस मामले को व्यावहारिक ज्ञान के दृष्टिकोण से ही देखता हूं। इस खंड में 'नागरिकों' शब्द का जिस प्रकार प्रयोग हुआ है, उस रूप में यह इतना समूह-वाचक है कि मुझे भय है, इस शब्द का व्यक्तिवाचक आशय दृष्टि से लोप हो जाना अति सम्भव है। अत: मैं 'नागरिकों' शब्द के स्थान पर 'प्रत्येक नागरिक' यह शब्द रखने का प्रस्ताव रख रहा हूं, ताकि समाज के प्रत्येक व्यक्ति को आजीविका के पर्याप्त साधन प्राप्त करने का अधिकार होगा। मेरे संशोधन से व्यक्ति-वाचक आशय अधिक अच्छी तरह व्यक्त होता है। यही भाषा बाद में इसी अध्याय के एक अनुच्छेद में, जिसमें कि प्राथमिक शिक्षा के अधिकार की चर्चा की गई है, प्रयुक्त हुई हैं अत: मैं कोई नवीन शब्द का सुझाव नहीं दे रहा हूं जो मसविदा लेखक की शब्दावलि में स्वीकार न किया गया हो। हां, मैं यह कह सकता हूं कि एक ही अध्याय के एक ही अनुच्छेद में समूह-वाचक शब्द 'नागरिकों' काम में लिया गया है, उधर उसी अध्याय के एक और अनुच्छेद में 'प्रत्येक नागरिक' यह शब्द प्रयोग किये गये हैं, और किसी अन्य अनुच्छेद में अन्य शब्द प्रयुक्त हुये हैं। इसी कारण से, अर्थात् एक ही अभिप्राय को व्यक्त करने के लिये विभिन्न शब्दों के प्रयोग करने के सम्बन्ध में प्रारूपक के मन में होने वाले अर्थ विभेद

[प्रो. के.टी. शाह]

के मामूली वृद्धि के लोगों की बुद्धि से बाहर होने के कारण मैं यह संशोधन पेश कर रहा हूं। यदि 'नागरिकों' शब्द समूह-वाचक आशय से प्रयुक्त हुआ है, तो मेरा निवेदन है कि मैं इस समय इस अनुच्छेद को पढ़ कर जितनी समझता हूं, उससे भी कहीं अधिक बुरी बात होगी। क्योंकि इस शब्द को समूह-वाचक अर्थ में लें, तो इससे अन्त में सामान्य (औसत) नागरिक की समृद्धि के लिये अनिश्चित आशा ही व्यक्त होगी। औसत का नियम बहुत धोखे में डालने वाला नियम है और इससे आपको एक ऐसा संतोष सा हो जाता है, जिसका वास्तव में कोई आधार नहीं होता। मेरी यह इच्छा नहीं है कि इस वाद-विवाद को ऐसा बना दूं कि मैं परिषद् का मनोरंजन करने की योग्यता का छिछला प्रदर्शन करने लगूं, पर मैं परिषद् को यह बताये बिना नहीं रह सकता कि एक कल के समान काम करने वाले अंक-विशेषज्ञ के बुद्धि चातुर्य्य से औसत के नियम को कैसे बिगाड़ा जा सकता है और ऐसा परिणाम निकाला जा सकता है, जो यथार्थता के सर्वथा प्रतिकूल हो। उदाहरणार्थ, क्या मैं निवेदन करूं कि मैंने एक महिलाश्रम की कहानी सुनी है। जब महिलाश्रम के प्रबन्धकों को पता चला कि आश्रम की दस लड़कियों में से एक लड़की ने स्पष्टत: दुराचरण किया है, तो गड़बड़ हुई और मामले की जांच करने और अपनी रिपोर्ट पेश करने के लिये एक अंक-विशेषज्ञ बुलाया गया। उसने आश्रम की महिलाओं के विषय में पड़ताल की और अपनी प्रसिद्ध रिपोर्ट पेश की, जिसमें उन्होंने बताया कि आश्रम की प्रत्येक महिला 90 प्रतिशत शुद्ध है तथा दस प्रतिशत गर्भवती है। इस बयान में उन्होंने केवल औसत के नियम का व्यवहार किया। मैं नहीं जानता कि इसको अच्छी तरह समझा गया है या नहीं कि विशेषज्ञ इस प्रकार के परिणामों पर पहुंच सकते हैं; और क्योंकि मैं नहीं चाहता कि हमारे विधान से हम इस विशेष प्रकार की पूर्णता प्राप्त करें; अत: मैं 'नागरिकों' शब्द के स्थान पर 'प्रत्येक नागरिक' यह शब्द रखना चाहता हूं, जिससे कि इस विषय में कोई संदेह का प्रश्न ही न रहे।

मैं 'समान रूप से नर और नारी' इन शब्दों को हटा देने का जो प्रस्ताव कर रहा हूं, उसका एक कारण और है। मेरे विचार में इसमें ऐसी पर्याप्त भावना है कि पुरुष महिलाओं के आश्रयदाता हैं। कोई कारण नहीं है कि पुरुष यह सोचे कि वह महिलाओं के बराबर है, उनसे उच्चतर होना तो दूर रहा। मेरा सदा से यही मत रहा है कि नारी की तुलना में नर एक निम्नतर प्रकार का जीव है।

मेरे ख्याल में पुरुष का महिलाओं के आश्रयदाता होने का यह दिखावा, कि जैसे हम उन्हें कोई विशेष अधिकार प्रदान कर रहे हैं, विधान से निकाल देना चाहिए।

नागरिक नागरिक है चाहे उसकी आयु, लिंग या मत कुछ हो और यह विधान द्वारा स्वीकृत मूल सिद्धान्त है, इसलिये मुझे कोई कारण दिखाई नहीं देता कि हम 'समान रूप से नर और नारी' क्यों कहें, जैसे कि हमने नर और नारियों को समान अधिकार देने की कृपा की है, विशेषत: जबकि वे अधिकार भी निदेशक ही हैं, और इनको तत्काल कार्यान्वित करना भी आवश्यक नहीं है। इन कारणों से, मेरा सुझाव है कि इस संशोधन को केवल शाब्दिक संशोधन नहीं समझना चाहिये, अपितु आशय सम्बन्धी संशोधन समझना चाहिये। और मुझे विश्वास है कि जो इस विधान को परिषद् में रख रहे हैं, वे इस संशोधन को स्वीकार कर लेंगे।

***उपाध्यक्ष:** मैं समझता हूं कि यद्यपि संशोधन नं. 884 अस्वीकार कर दिया जायेगा, किन्तु मैं श्री नज़ीरुद्दीन को इस पर बोलने का अवसर अवश्य दूंगा।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** श्रीमान्, मैं इसे उपस्थित नहीं कर रहा हूं।

***उपाध्यक्ष:** इसके बाद नं. 885, प्रोफेसर के.टी. शाह।

***प्रो. के.टी. शाह:** उपाध्यक्ष महोदय, श्रीमान्, मैं प्रस्ताव करता हूं:

''कि अनुच्छेद 31 के खंड (2) के स्थान पर निम्नलिखित खंड रख दिया जाये:

(2) कि देश के प्राकृतिक साधनों का, जो कि खानों, खनिज सम्पत्ति, वनों, नदियों तथा बहते हुए जलों के रूप में एवं देश के तट के साथ-साथ सागर के रूप में है, स्वामित्व, नियंत्रण तथा प्रबन्ध सामूहिक रूप से देश में निहित होगा तथा देश के ही अधीन होगा और समुदाय की समाज के हित में राज्य ही उनका विकास करेगा और उन्हें उत्पादन-कार्य में लगायेगा; जो कि (अर्थात् राज्य) केन्द्रीय एवं प्रान्तीय सरकारों अथवा स्थानीय शासक प्राधिकारी अथवा कानूनी निगम (कारपोरेशन) द्वारा प्रतिरूपित होगा, जैसे भी संसद् के कानून द्वारा व्यवस्था की जाये।''

श्रीमान्, मौलिक वाक्यखंड, जिसके स्थान पर मैं यह नया खंड रखना चाहता हूं, इस प्रकार है:

[प्रो. के.टी. शाह]

(2) कि लोकसमुदाय के प्राकृतिक साधनों का स्वामित्व तथा नियंत्रण इस प्रकार बंटा हो कि जिससे सार्वजनिक हित का सर्वोत्तम अनुसेवन हो;''

यदि मैं ऐसा कहने का साहस करूं, तो श्रीमान्, इस खंड का जिस प्रकार कि यह इस समय मसौदे में है, कुछ भी अर्थ निकाला जा सकता है। और जिस पृष्ठ भूमि पर हम कार्य कर रहे हैं, जिस परम्परा के अधीन शासन-व्यवस्था चल रही है और इस परिषद् में निहित हितों के प्रति जितनी अनुशक्ति है, उन सबके होते हुए, मुझे भय है कि यदि यह खंड ज्यों का त्यों रहने दिया गया तो इससे कोई प्रयोजन सिद्ध न होगा। बल्कि इस खंड से देश के समुचित विकास अथवा सामाजिक न्याय के किसी हद तक स्थापित करने अथवा देश की सम्पति के न्यायोचित पुनः वितरण की आशायें भी शून्य स्वप्न बनकर रह जायेंगी। अतः मेरा सुझाव है कि इस खंड की जगह एक नया खंड रखना चाहिए जो कि मैंने अभी पढ़कर सुनाया है। इससे प्राकृतिक साधनों का स्वामित्व, नियंत्रण तथा प्रबंध सामूहिक रूप से जनता में निहित हो जायेगा और जनता ही केन्द्रीय अथवा प्रान्तीय अथवा स्थानीय सरकारों अथवा ऐसी कानूनी संस्थाओं द्वारा जो एतदर्थ बनाई जायें, इन साधनों को उत्पादन कार्य में लगायेंगी और उनका विकास करेंगी।

मेरे विचार में इस बात पर तो कोई मतभेद हो ही नहीं सकता कि मैंने जिस प्राकृतिक साधनों का वर्णन किया है, किसी मनुष्य ने अपने श्रम से उनका मूल्य स्थिर नहीं किया।

वे प्रकृति के उपहार हैं। वे प्रारम्भिक देन हैं जो प्रत्येक देश को कम वेशी परिमाण में मिलती है; ओर यह केवल न्याय है कि वे सामूहिक रूप से सारी जनता की निधि बने रहें। और यदि उनका विकास हो तो वह भी सामूहिक रूप से जनता द्वारा, उसी के निमित्त और उसकी ओर से होना चाहिए।

ऐसे प्राकृतिक साधनों का उत्पादन चाहे जनता के लिए कितना भी लाभदायक, महत्त्वपूर्ण अथवा आवश्यक हो; पर निहित हितों, निजी एकाधिकारों एवं स्वयं के लिए लाभ की आकांक्षा करने वालों की सृष्टि या उनकी उपस्थिति ही मेरे विचार में जनता के प्रति और समस्त देश के भावी हितों और आने वाली पीढ़ी के प्रति अन्याय है। ऐसा प्रतीत होता है कि हम में से वे लोग जो निजी सम्पत्ति

और लाभोद्देश्य के आदर्शों से मानो चोटी तक ओतप्रोत हैं, इस बात को पूर्ण रूप में समझ नहीं पाते।

मेरे संशोधन में जिन साधनों की चर्चा है उनका मूल्य या महत्त्व किसी की सम्पत्ति होने के कारण उत्पन्न नहीं होता, पर इससे बड़ी बात यह है कि उनका वास्तविक मूल्य सदा समाज के मिले-जुले प्रयत्नों से उत्पन्न होता है। वह उन सामाजिक परिस्थितियों से उत्पन्न होता है जो किसी विशेष हितों या इस प्रकार के साधनों को मूल्यवान बनाती है।

खानों और खनिज सम्पत्ति को ही लीजिए। सब जानते हैं कि यह ऐसी सम्पत्ति है जो घटती रहती है, नष्ट होती रहती है। दुर्भाग्य है कि इनकी परवाह या रक्षा करने के स्थान पर, इन्हें बचत और मितव्ययता से जनता के प्रयोग के लिए सुरक्षित रखने के स्थान पर इन्हें विशेषाधिकार वाले तथा लाभ के इच्छुक व्यक्तियों और गैर-सरकारी एकाधिकारियों को सौंप दिया गया है। इस कारण इन पर हमारा कोई नियंत्रण नहीं है। वास्तव में उनका ऐसी विधि से प्रयोग किया जाता है जो लगभग अपराधपूर्ण है, जिससे कि इनके स्वामी इनसे अपने लिए अधिक से अधिक लाभ प्राप्त कर सकें। यह कोई नहीं सोचता कि जब यह खानें समाप्त हो जायेंगी या जब युगों की संचित सम्पत्ति का अवसान हो जायेगा, तब क्या होगा।

अतः मेरा सुझाव है कि हम इन खानों और खनिज सम्पत्ति के विदोहन में गैर-सरकारी लाभ-आकांक्षियों के दूरकालिक हितों को सन्निहित न होने दें। इन खानों और खनिज सम्पत्ति पर हमारी औद्योगिक स्थिति निर्भर है, हमारी आकांक्षायें, आशायें और इस देश के उद्योगीकरण के स्वप्न निर्भर है और इससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि हमारे देश की सुरक्षा और प्रतिरक्षा निर्भर है। इसलिए मैं फिर कहता हूं, यह जनता और भावी संतान के प्रति अत्याचार होगा, यदि आप अब भी यह न समझें कि देश की खनिज सम्पत्ति को गैर-सरकारी निकायों के हाथों में अछूता नहीं छोड़ा जा सकता कि वे जैसे चाहें अपने लाभार्थ उसका प्रयोग करें, दुरुपयोग या विदोहन करें, उसे खत्म कर दें।

अतएव अब उचित समय है कि हम विधान में स्पष्ट व्यवस्था कर दें कि इन साधनों का स्वामित्व, सीधा नियंत्रण, प्रबंध और विकास अन्त में राज्य के

[प्रो. के.टी. शाह]

हाथ में हो या राज्य के अभिकर्ता, राज्य के प्रतिनिधि या राज्य द्वारा बनाए हुए निकायों जैसे प्रान्तों, नगर-मंडलों या कानूनी संस्थाओं के हाथ में हों।

मेरे विचारों के समर्थन में एक और तर्क भी दिया जा सकता है। यह साधन है ही इस प्रकार के कि उनका अच्छी तरह से या लाभप्रद तरीके से तब तक उत्पादन नहीं किया जा सकता, जब तक कि वे एकाधिकार में न हों। किसी न किसी रूप में उनका विकास एकाधिकार-प्रणाली द्वारा ही करना होगा। और एकाधिकार निकायों पर सदा अविश्वास किया जाता है, जब तक कि वे गैर-सरकारी अधिकार में होते हैं और निजी लाभ के हेतु चलाए जाते हैं। यदि उन पर एकाधिकार रहना है, जैसा कि मुझे विश्वास है अनिवार्य रूप से होगा ही, तो यह अच्छा होगा कि उन पर राज्य का स्वामित्व रहे और राज्य उनका प्रबन्ध करे और उन्हें चलाये।

उन पर राज्य द्वारा नियंत्रण की व्यवस्था कर देना ही काफी नहीं है। जैसा कि मौलिक खंड में किया गया है। यही कह देना काफी नहीं है कि उनका उपयोग इस प्रकार किया जायेगा कि ''सार्वजनिक हित का अनुसेवन हो''। इसका तो प्रत्येक शब्द अनिश्चित, अपरिभाषित और अपरिभाष्य है और किसी न्यायालय में, किसी न्यायाधिकरण के समक्ष कोई चतुर, कुशल वकील इसका आशय ऐसा तोड़-मोड़ सकता है कि वह मसौदा बनाने वाले के भाव से सम्पूर्ण रूप से भिन्न हो। मैं यह मान लेता हूं कि मसौदा बनाने वाले का कुछ ऐसा ही भाव है जो कि मैं परिषद् के सामने रखने का प्रयत्न कर रहा हूं। हमें इस बात पर और अधिक पक्का भरोसा होना चाहिये कि उनका (साधनों का) उचित, सामाजिक और पूर्णतया लाभप्रद उपयोग किया जायेगा; और यह तभी हो सकता है कि जब उनका स्वामित्व, नियंत्रण तथा प्रबंध जनता के हाथों में हो। अतएव तात्कालिक सम्पत्ति, उद्योगीकरण, राष्ट्रीय सुरक्षा तथा सामाजिक न्याय के विचारों से ही प्रेरित होकर मैं परिषद् से अनुरोध करता हूं कि मेरे संशोधन पर अनुकूलता से विचार किया जाये। इसका अर्थ है कि जब तक राज्य या उसके प्रतिनिधियों को इन साधनों पर समुचित सर्वांगी स्वामित्व, सम्पूर्ण नियंत्रण और सीधा प्रबंधाधिकार नहीं होगा तब तक हम

अपने सारे स्वप्नों को अच्छे, कुशल और कम खर्च तरीके से पूरा न कर सकेंगे। मैं उन स्वप्नों को इसी प्रणाली से पूरा करना चाहता हूं।

मुझे परिषद् को यह बताने की शायद ही आवश्यकता हो कि इस सम्पत्ति के अधिकांश साधनों का अभी तक विकास नहीं किया गया है या बहुत ही मामूली सा विकास किया गया है। आशा की जाती है कि आगामी वर्षों में हम देश का, इसके प्रत्येक उपलब्ध साधनों का विकास करने हेतु एक अधिक प्रभाववर्ती, अधिक उपयोगी और अधिक अच्छी योजना बनायेंगे और उसे कार्यान्वित करेंगे। यदि ऐसा है, यदि देश में जो नवजीवन स्फुरित हो रहा है, यदि उसके लिये हम इस काम को सबसे पहले हाथ में लेने जा रहे हैं, यदि हम इसे सिद्ध करने जा रहे हैं, तो मैं आपके समक्ष यह बात रखता हूं, श्रीमान्, कि इस प्रकार की किसी व्यवस्था के बिना हम अपने उद्देश्य को इतनी जल्दी और मितव्ययता से पूरा नहीं कर सकेंगे, जितना कि हम चाहते हैं।

मैं बस एक बात और कहूंगा। मैंने देश के प्राथमिक साधनों की सूची में जान-बूझकर सब से बड़ा साधन शामिल नहीं किया है; वह है भूमि। मैंने इसकी चर्चा नहीं की है। इसका कारण यह नहीं है कि मेरी ऐसी धारणा नहीं है कि भूमि पर भी सामूहिक रूप से स्वामित्व तथा अधिकार एवं कार्य होना चाहिये। किन्तु इसका कारण यह है कि मैं मानता हूं कि कुछ वर्षों में भूमि अधिपतियों-जमींदारों को निकालने के लिये और उनकी जमीनों पर अधिकार करने के लिये जो विभिन्न चेष्टायें की गई हैं, उनका स्वयं ही यह अर्थ हो जायेगा कि देश की कृषि-भूमि अर्थात् उपजाऊ भूमि पर सामूहिक रूप में देश का अधिकार है और उस भूमि का प्रयोग और विकास देश के निमित्त ही होना चाहिये।

इसलिये, श्रीमान्, मैंने उन भौतिक साधनों पर जोर दिया है, जिन पर हमें सामूहिक रूप से स्वामित्व रखना चाहिये और जिनका हमें मिलजुल कर विकास करना चाहिये, किन्तु मैंने उनमें से सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण साधन की जानबूझ कर चर्चा नहीं की है। पर मुझे विश्वास है कि इससे इस सुझाव के निर्णय पर विपरीत प्रभाव नहीं पड़ेगा। मैं यह प्रस्ताव परिषद् में विनम्रता से पेश करता हूं।

(संशोधन सं. 886 और 891 पेश नहीं किये गये।)

***प्रो. के.टी. शाहः** उपाध्यक्ष महोदय, श्रीमान्, मैं विनयपूर्वक प्रस्ताव करता हूं:

''कि अनुच्छेद 31 के खंड (3) के स्थान पर निम्नलिखित खंड रखा जाये:

'(3) कि भौतिक सम्पत्ति के उत्पादन में, सामाजिक सेवा में, अथवा सार्वजनिक हित की चीजों में किसी रूप में गैर-सरकारी एकाधिकार नहीं होंगे और न ही उत्पादन और वितरण के साधनों का गैर-सरकारी हाथों में संकेन्द्रण होगा और ऐसे संकेंद्रण या एकत्रीकरण को रोकने के लिये राज्य प्रत्येक उपाय काम में लेगा।''

श्रीमान्, मौलिक खंड का मसौदा इस प्रकार है:

''(3) कि आर्थिक व्यवस्था के चालन का ऐसा परिणाम न हो कि धन और उत्पादन-साधनों का संकेंद्रण हो जाये जो सबके लिये अहितकारी हो।''

मुझे इस बार भी वही तर्क उपस्थित करना है कि मेरे संशोधन में जो शब्द प्रयुक्त हुये हैं, वे मैंने लगभग पूर्णत: मसौदे से ही लिये है। पर मसौदे की अपेक्षा मैंने इसे अधिक सुस्पष्ट और संशयरहित बनाने का प्रयत्न किया है। श्रीमान्, मैं अनुभव करता हूं कि यदि मसौदे को जैसे का तैसा रहने दिया गया, तो इसका ऐसा अर्थ निकाला जा सकता है जो कि कदाचित मसौदा बनाने वाले का विचार कदापि नहीं होगा; अथवा कम से कम पाठक इसे उस अर्थ में नहीं समझ सकता।

श्रीमान्, मेरा ख्याल है कि एकाधिकार सार्वजनिक कल्याण के लिये बहुत अहितकारी होते हैं। प्रत्येक देश में, जिसका कि इतिहास लिपिबद्ध है, जहां भी एकाधिकार स्थापित हुए, उनके अस्तित्व के विरुद्ध आवाज उठाई गई है। कुछ बहुत महत्त्वपूर्ण निर्णय जिनका कि इंग्लिश विधान के विकास पर बहुत प्रभाव पड़ा है, सम्राट द्वारा प्रदत्त एकाधिकारों के सम्बन्ध में हैं। इंग्लैंड, फ्रांस या अन्य देशों में जहां कि एकाधिकार अधिक विकट रूप में थे, गत युगों में एकाधिकारों के विरुद्ध जितना तीव्र द्वन्द हुआ था, उतना किसी और प्रणाली के विरुद्ध नहीं हुआ।

पर यह आवश्यक नहीं है कि एकाधिकारों की स्थापना या निर्माण स्वीकृति या आज्ञापत्र द्वारा या कानूनी, साक्षात विधि से ही हो, या विधान के इस प्रावधान जैसी किसी व्यवस्था के प्रत्यक्ष प्रवर्त्तन या व्यापक रूप से कानून की प्रणाली द्वारा ही हो, जिससे कि उन एकाधिकारों का पता लगाया जा सके और उन पर अंकुश रखा जा सके।

एकाधिकार इससे भी अधिक कृत्रिम पद्धति द्वारा विकसित होते हैं, एकाधिकार अधिकतर उन्हीं परिस्थितियों के दबाव से उत्पन्न होते हैं, जो प्रतिद्वन्द्वता की उपज समझी जाती है। हमें बताया जाता है कि प्रतिद्वन्द्वात्मक समाज में सार्वजनिक हित की पूर्ति इसी प्रकार से हो सकती है कि केवल परस्पर प्रतिस्पर्धा होने से ही प्रतिद्वंद्वी उत्पादकों को इस तरह अपने मूल्य कम करने पड़ेंगे, उन्हें लागत अथवा विक्रय मूल्य को घटाना पड़ेगा, यदि एकाधिकृत पदार्थ का अधिकाधिक उपभोक्ता प्रयोग करें तो अधिकाधिक लाभ हो सकता है। पर वास्तव में, श्रीमान्, प्रत्येक देश में जहां व्यापक पैमाने पर उद्योग या व्यापार आरम्भ हो गया है, आप देखेंगे कि प्रतिद्वन्द्वी शीघ्र ही यह समझ जाते हैं कि प्रतिद्वन्द्वता में किसी का लाभ नहीं है। अतः परस्पर बातचीत करके और ट्रस्ट सिन्डीकेट तथा कारटेल बनाकर सब प्रकार के उपायों से वे वस्तुतः एकाधिकारों का निर्माण कर लेते हैं। यह एकाधिकार देखने में चाहे अबाधक हों, या ऐसा भी दिखाई दे कि उनका उद्देश्य लागत कम करना और ऊपरी व्यय घटाना है जिससे कि सामग्री अधिक सुगमता से और सस्ती उपलब्ध हो सके; पर वास्तव में उनका परिणाम यह होता है कि उद्योगपतियों के बढ़ते हुए लाभ में अत्यधिक वृद्धि हो जाती है।

श्रीमान्, मेरे विचार में इस परिषद् के विद्वान सदस्य इंग्लैंड या अमरीका में ट्रस्टों तथा जर्मनी या फ्रांस में सिन्डीकेंटों और कारटेलों के इतिहास से तो भली भांति परिचित होंगे, और मुझे यह इतिहास दोहराने की आवश्यकता नहीं होगी। वे सुगमता से समझ लेंगे कि कैसे छल से, कैसे शनैः शनैः, पर कितनी दुर्निवारता से ट्रस्ट, सिन्टीकेट, कारटेल, संयोग अथवा एकाधिकरण स्थापित करने का आंदोलन सब महत्त्वपूर्ण उद्योगों में जोर पकड़ता गया, वे लोग इन एकाधिकारों पर सुदृढ़ता

[प्रो. के.टी. शाह]

से अधिकार रखने और अपने ही भाई-बांधवों में से कुछ चुने हुए लोगों में ही सीमित रखने के लिये क्या-क्या उपाय काम में लेते हैं; और संयुक्त निदेशक-मंडल (Interlocking Directorate) का नीति के सामान्य निदेशन में कितना हाथ होता है; जब प्रतिद्वन्द्वता तीव्र होती है तो वे प्रतियोगिता-क्षेत्र में प्रत्येक नये उद्योग को नष्ट करने का कैसा प्रयत्न करते है, जिससे कि सारे क्षेत्र पर उनका निर्द्वन्द्व अधिकार हो जाये, सारे क्षेत्र के वे निर्द्वन्द्व स्वामी बने रहें।

इस देश में हमें विदेशी एकाधिकारियों के कार्य का अत्यन्त कटु, नया-नया, भिन्न-भिन्न प्रकार का और अत्यधिक अनुभव है। ये लोग कुछ समय पूर्व तक हमारे देश में सत्ताधारी थे, जिससे कि देश के किसी भी उद्योग को, जो कि विदेशी एकाधिकारियों के निहित हितों के लिये अहितकर हो, विदेशी एकाधिकारियों से अतीव तीव्र संघर्ष करना पड़ता था।

अभी कुछ ही दिन पहले हमने एक महान् राष्ट्रीय जलयान-उद्योग के विकास का इतिहास देखा है। जिनको यह पता है कि इस उद्योग को कितने उलट-फेर में से निकलना पड़ा है, वे समझ सकेंगे कि इस उद्योग को कितने लम्बे वर्षों तक संघर्ष करना पड़ा, कितनी निरुत्साहक परिस्थितियों का उसे सामना करना पड़ा, और वह सब इसलिये कि उन दिनों भारत सरकार एक विदेशी सरकार थी। क्योंकि प्रतिद्वंद्वी भारतीय उद्योग नया था, अतः सरकार को यह बात अपने हित में न लगती थी कि वह किसी भी प्रकार विदेशी एकाधिकारियों को हानि पहुंचने दे तथा नवीन भारतीय उद्योग को पनपने दे। अतः भारतीय उद्योग को सब प्रकार के विघ्नों और कठिनाइयों का सामना करना पड़ा, जिनका पूर्ण विवरण सुनाने का न यह स्थान है और न इसके लिये समय ही है। इन सब बाधाओं के रहते हुए भी जनता के समर्थन से तथा वे जो कार्य करना चाहते थे, उसकी आंतरिक शक्ति से, यह उद्योग अब तक जीवित रह गया। किन्तु इससे वह मुख्य तर्क गलत सिद्ध नहीं होता जो कि मैं परिषद् के समक्ष रखने में प्रयत्नशील हूं। वह तर्क यह है कि गैर-सरकारी एकाधिकार अपनी प्रकृति से ही, जनता के हितानुकूल नहीं होते, जब तक कि वे समस्त जनता के एकाधिकार में न हों।

गैर-सरकारी एकाधिकारी सदा एक लुटेरा होगा। जो लोग उसकी सामग्री या सेवाओं का उपभोग करेंगे, वह उनको ढूंढेगा तथा शिकार के समान उन पर झपटेगा। चाहे एक विशेष वस्तु बनाने वाला साधारण उद्योग हो, या चाहे उपभोग्य सामग्री का उत्पादन करने वाला उद्योग हो, चाहे शिक्षा अथवा स्वास्थ्य के समान सामाजिक सेवा निकाय हो, सब में सदा यह भय है कि एकाधिकारी प्रबल निजी हित का निर्माण कर लेगा, जिसे सहन करना देश के हित में कदापि न होगा। मैं इसी कारण चाहता हूं कि शिक्षा या शिक्षा सम्बन्धी यंत्रों, या स्वास्थ्य अथवा मूल औषधियों के उत्पादन या औषधियों के निर्माण अथवा शल्य चिकित्सा के तथा अन्य औजारों या सामग्रियों के सम्बन्ध में एकाधिकारों के स्थापित होने की सम्भावना का ही वर्जन कर दिया जाये। मैं परिषद् से नम्रतापूर्वक निवेदन करना चाहता हूं कि हमारे देश में गैर-सरकारी एकाधिकारियों के आधिपत्य होने की अत्यधिक आशंका है। यदि हम आरम्भ से ही, इसी विधान में, यह सर्वथा स्पष्ट न कर देंगे कि नवभारत में ऐसे निजी एकाधिकारों के लिये कोई स्थान न होगा, जो कि लुटेरे हों, जो अपने ही समान उद्योगों का ऐसे शिकार करें जैसे कि प्रशांत सागरों का कोई जंगली या तथाकथित जंगली जन्तु भी नहीं करता।

आधुनिक काल का सभ्य नरभक्षी, रक्त शोषक है। ऐसा शोषक है जिसको कि उच्च सम्मान मिलता है, जिसे प्रायः उपाधियां दी जाती है, जो इस परिषद् में पूर्णतः प्रतिरूपित है और इसी कारण वह आपको अपनी इच्छा पर चला सकता है, वह आपको कई प्रकार से प्रेरणा दे सकता है, कि आप इसी विधान में उसकी सुरक्षा के लिये क्या प्रावधान रखें, जिससे कि उसका जीवनकाल और दीर्घ हो जाये और वह विभिन्न प्रकार से बढ़ता जाये, विभिन्न रूप धारण करता जाये और अपने एकाधिकार को अधिक प्रबल बनाता जाये, पर यह सब जन-साधारण के लिये अहितकर होगा, इस देश की सुरक्षा के लिये अहितकर होगा और उन सबके लिये अहितकर होगा जो इस समय की आशा लगाये बैठे थे। वे सब लोग यह आशा करते थे कि इस युग में, जब कि ऐसा समझा जाता है कि वास्तविक शक्ति इस परिषद् में लोगों के प्रतिनिधियों में निहित है, वे कम से कम जीवन की तात्कालिक आवश्यकतायें तो लाभाकांक्षियों को कर चुकाये बिना प्राप्त कर सकेंगे और इससे वे जानवरों से कुछ अच्छा जीवन बिताने में समर्थ हो सकेंगे।

***माननीय श्री के. सन्तानम्** (मद्रास : जनरल): क्या 'गैर-सरकारी एकाधिकार' इन शब्दों में पब्लिक कम्पनियां भी समाविष्ट हैं?

***प्रो. के.टी. शाह:** मैं एक पिछले संशोधन में पहले ही कह चुका हूं कि मैं एकाधिकारी को तभी रहने देना चाहूंगा जब वे सार्वजनिक (पब्लिक) एकाधिकार हों, या तो सरकारी अधिकार में हों, राज्य उनका स्वामी हो या राज्य के कारपोरेशन इसके स्वामी हों। यदि पब्लिक कम्पनियों से आपका अर्थ कानूनी कम्पनियां हों तो मेरा उत्तर 'हां' में है। पर यदि आप पब्लिक कम्पनियों का अर्थ उन्हीं कम्पनियों से लेते हैं जो कम्पनी कानून के अन्तर्गत आ जाती हैं और रजिस्टर (दर्ज) हो गई हैं, तो मेरा उत्तर नकारात्मक है।

***माननीय श्री के. सन्तानम्:** 'गैर-सरकारी कम्पनियां' इन शब्दों में 'पब्लिक लिमिटेड कम्पनियां' नहीं आयेंगी।

***प्रो. के.टी. शाह:** मैं अपने माननीय मित्र को आमंत्रित करता हूं कि इसको अधिक स्पष्ट करने में वे मेरी सहायता करें। यदि वे ऐसा नहीं करेंगे तो उनके इन विभेदात्मक शब्दों पर अधिक ध्यान न देने के लिये वे मुझे क्षमा करें। मेरे दिमाग में तो ऐसे एकाधिकारी निकाय हैं जैसे कि प्रन्यास (ट्रस्ट), संयुक्त संचालक-मंडल और ऐसी विभिन्न पद्धतियां जिनके द्वारा बैंक, बीमा कम्पनियां, यातायात प्रतिष्ठान, विद्युत प्रतिष्ठान, शक्ति निगम (पावर कारपोरेशन) सब प्रकार के जनोपयोगी निगम परस्पर मिल जाते हैं—खड़े, पड़े, तिरछे, उल्टे, सीधे सब प्रकार से मिल जाते हैं इसका फल यह होता है कि यदि आप उन सबको एक साथ लें, तो आप देखेंगे कि इस देश का आर्थिक जीवन 300 से 500 लोगों या परिवारों के पंजे में है। उनके भतीजे, भतीजी, भानजे, भानजी, विभिन्न कामों में संलग्न हैं। हो सकता है कि उनमें से कोई कारखाने में काम कर रहा है, तो कोई खेलों में नाम कमा रहा है, तीसरा कला के साथ चोचले कर रहा है और चौथा विज्ञान और विद्वत्ता की भेंट दे रहा है। एक प्रबंधक (मैनेजर) हो सकता है और दूसरा लोकोपकारी हो सकता है और इसके अतिरिक्त कोई अन्य धार्मिक गुरु हो सकता है, पर इससे कुछ रूप नहीं बदलता। इस देश में कुछ सौ परिवार हैं जो हम सब को इसी प्रकार की आर्थिक दासता में जकड़े हुए हैं जैसी कि अमरीका के दक्षिणी राज्यों में भी नहीं है। यदि आप अब भी अपनी आंखें नहीं

खोलते, तो आप अपनी ही आंखों के सामने ऐसी क्रांति को ऐसे रूप में आमंत्रित कर रहे हैं, जिस रूप में हम में से कोई भी उसे नहीं चाहता, पर उसे हम में से कोई रोक भी न सकेगा। श्रीमान्, मैं विनम्रतापूर्वक यह सुझाव परिषद् के समक्ष रखता हूं।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** श्रीमान्, मैं नम्रतापूर्वक प्रस्ताव करता हूं:

''कि अनुच्छेद 31 के खंड (3) में 'संकेन्द्रण' (Concentration) शब्द के स्थान पर 'अनुचित संकेन्द्रण' यह शब्द रख दिये जायें।''

मेरे संशोधन का यह प्रभाव होगा कि इस खंड द्वारा धन और उत्पादन-साधनों के सार्वजनिक अहितकारी अनुचित संकेन्द्रण का वर्जन किया जायेगा। मेरा निवेदन है कि हमारे यहां आजकल जो आर्थिक व्यवस्था है और जिसको ध्यान में रखकर यह प्रावधान किया गया है, उसका अनिवार्यत: यह अर्थ होगा कि धन और उत्पादन-साधनों का प्रयोग लाभप्रद रीति में न होंगे; यदि हम साम्यवादी राज्य बनाना नहीं चाहते, तो असमानतायें अनिवार्य होंगी। यहां तक कि आजकल के साम्यवादी राज्य में भी असमानतायें विद्यमान है। श्रीमान् मेरा निवेदन है कि सब लोगों में धन और उत्पादन-साधनों का समान वितरण असम्भव है। मेरा निवेदन है कि एक कुशल व्यवसायी, एक विख्यात वकील, एक विख्यात मंत्री और एक साधारण मनुष्य अथवा चपरासी की आय समान नहीं हो सकती। अत: मैं निवेदन करता हूं कि हमें बस यही प्रयत्न करना चाहिये कि धन एवं उत्पादन-साधनों का ''अनुचित'' संकेन्द्रण रोका जाये। कुछ धन और कुछ उत्पादन-साधनों का संकेन्द्रण तो अनिवार्य रूप से होगा ही। श्रीमान्, मेरा निवेदन है कि इस शब्द से गलतफहमी दूर हो जायेगी।

(संशोधन सं. 896 और 903 प्रस्तुत नहीं किये गये।)

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** श्रीमान्, संशोधन सं. 904 में तीन भाग हैं जिनमें से मैं केवल दूसरे और तीसरे भाग को पेश करना चाहता हूं।

श्रीमान्, मैं नम्रतापूर्वक प्रस्ताव करता हूं।

''कि अनुच्छेद 31 के खंड (5) में 'abused' शब्द के स्थान पर 'exploited' शब्द और 'economic necessity' इन शब्दों के स्थान पर 'want' शब्द रख दिये जायें।''

***उपाध्यक्ष:** क्या भाषण देना आवश्यक है?

***श्री नजीरुद्दीन अहमदः** नहीं, श्रीमान्।

***उपाध्यक्षः** संशोधन सं. 905, श्री कामत!

***श्री एच.वी. कामतः** उपाध्यक्ष महोदय, श्रीमान्, मैं देखता हूं कि जहां तक मेरे इस संशोधन का सम्बन्ध है, मुझे बहुत समर्थन मिल रहा है। मैं देखता हूं कि मसौदा-समिति ने इसी आशय का एक संशोधन सं. 907 रखा है।

अपने वर्तमान रूप में खंड निम्न प्रकार है:

''...राज्य अपनी नीति का ऐसा संचालन करेगा... कि नागरिकों को आर्थिक आवश्यकताओं के वशीभूत होकर अपने वयस अथवा शक्ति के अनुकूल उपव्यवसायों (अवोकेशन्स) में न जाना पड़े।''

मेरे संशोधन का उद्देश्य ''लिंग'' शब्द भी जोड़ना है, जिससे कि यह फिर इस प्रकार बन जायेगा:

''आर्थिक आवश्यकताओं के वशीभूत होकर अपने वयस, लिंग अथवा शक्ति के अनुकूल उपव्यवसायों में न जाना पड़े।''

श्रीमान्, मैं अनुभव करता हूं कि जब तक ऐसी ही आर्थिक व्यवस्था रहेगी, जैसी कि आज है, तब तक यह कल्पना की जा सकती है कि कदाचित स्त्रियों को अत्यधिक आवश्यकता के वशीभूत होकर ऐसा काम करना पड़े जो कि उन अवस्थाओं के अनुकूल न हों, जो कि प्रकृति ने उन पर आरोपित कर रखी है। व्यक्तिगत रूप से मेरा ख्याल है कि ऐसी व्यवस्था करना एक बुद्धिमानी का संशोधन होगा, बुद्धिमानी की बात होगी कि महिलाओं को आवश्यकता से बाध्य होकर कुछ विशेष उपव्यवसायों में न जाना पड़े।

किन्तु, इस संशोधन की सूचना देने के बाद मैंने इस परिषद् में अपनी माननीय महिला मित्रों से पता कर लिया है कि वे इस खंड में इस प्रकार का प्रावधान रखवाने के लिये विशेष उत्सुक नहीं हैं। अतः यद्यपि मेरा विचार इसके प्रतिकूल है, यद्यपि मैं इस संशोधन को रखने के लिये इच्छुक हूं, तदपि मैंने उनकी इच्छा का आदर करने के हेतु इस संशोधन पर जोर न देने का तथा इसे उपस्थित न करने का निश्चय किया है। हां, मैं संशोधन सं. 907 पर निर्णय की प्रतीक्षा करूंगा, जो सरकारी तौर पर रखा गया है।

***श्री सी. सुब्रह्मण्यम** (मद्रास : जनरल): श्रीमान्, यदि एक सदस्य अपना संशोधन उपस्थित नहीं कर रहा हो, तो क्या उस समय वक्तृता दी जा सकती है?

***उपाध्यक्ष:** मुझे अंत तक पता नहीं चल सका कि श्री कामत अपना संशोधन पेश नहीं करेंगे। हम सब इस मामले में श्री कामत के हाथ में हैं। मैं कोई ज्योतिषी नहीं हूं।

इसके पश्चात् हम संशोधन सं. 906 को लेते हैं। श्री साहू!

श्री लक्ष्मी नारायण साहू (उड़ीसा : जनरल): उपप्रधान जी, मेरे नाम पर जो संशोधन यहां है मैं उसको अभी प्रस्तावित करता हूं।

...That in clause (v) of article 31, for the words 'their age' the words 'their age, sex' be substituted.''

[कि अनुच्छेद 31 के खंड (5) में ''उनकी आयु'' इन शब्दों के स्थान पर ''उनकी आयु, लिंग'' यह शब्द रख दिये जायें।]

अभी कामत साहब ने यहां फरमाया है कि वे भी चाहते हैं कि यह शब्द सैक्स (sex) यहां रहना चाहिये। लेकिन उन्होंने कहा है कि कई स्त्री मेम्बरों ने इस शब्द को पसन्द नहीं किया, इसलिये उन्होंने इस शब्द को यहां पर नहीं रखा। लेकिन मैं चाहता हूं कि यह शब्द यहां रहे। मैं यह जानना चाहता हूं कि जो उन्होंने यह कहा कि वे इस शब्द को पसन्द नहीं करते, इसका क्या सबब है। हम यह देखते हैं कि पहले ही फंडामैंटल राइट्स (Fundamental Rights) के आर्टिकल 9 में तो शब्द 'सैक्स' का प्रयोग किया गया है। हम लोग यह भी जानते हैं कि हम भाषा में भी लिंग का प्रयोग करते हैं, तब यहां सैक्स शब्द के प्रयोग करने से क्या खराबी होगी, यह मेरी समझ में नहीं आई।

दूसरी चीज़ यह है कि अगर हम इस जगह पर इस सैक्स शब्द को नहीं लावेंगे तो बहुत असुविधा रह जायेगी। इसलिये मैं चाहता हूं कि बात को स्पष्ट करने के लिये यहां यह शब्द जरूर जाना चाहिये:

"unsuited to their age, sex or strength.''

ऐसी बहुत सी फ़ैक्टरीज़ हैं और ऐसी बहुत सी खानें हैं, जहां स्त्रियों का काम करना मुनासिब नहीं। लेकिन बहुत सी स्त्रियां ऐसी हालत में होती हैं कि उनको

[श्री लक्ष्मी नारायण साहू]

वहां जाकर काम करने के लिये बाध्य होना पड़ता है। इसलिये इसको बन्द करने के लिये यहां स्पष्टतया यह शब्द सैक्स जरूर रखना चाहिये।

तीसरी बात मैं यह देखता हूं कि ड्राफ्टिंग कमेटी के मेम्बरान भी इस शब्द को यहां रखना चाहते हैं। तो फिर जब ड्राफ्टिंग कमेटी के मेम्बर भी जब इस शब्द 'सैक्स' को यहां लाना चाहते हैं, तो फिर इसको यहां से हटाने के लिये कोई सबब नहीं है। इसलिये मैं चाहता हूं कि यह शब्द 'सैक्स' यहां जरूर रहना चाहिये जिससे औरतों को बहुत सुविधा हो। हम लोगों के देश में स्त्रियों की हालत बहुत बुरी है और मैं नहीं चाहता कि स्त्रियां जाकर खान में काम करें और रात में भी काम करें और बाध्य होकर ऐसा काम करें जिसमें घर की हालत बहुत खराब हो जाये। इसलिये यह शब्द जरूर रहना चाहिये और मैं ज्यादा इसका कुछ कारण नहीं देता हूं। इन तीन कारणों से मैं यह प्रस्ताव करता हूं कि यह शब्द यहां जरूर रहना चाहिये और मैं इस अमेंडमेंट को पेश करता हूं।

***उपाध्यक्षः** संख्या 907, डा. अम्बेडकर।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** मैं इसे पेश नहीं कर रहा हूं।

***उपाध्यक्षः** इसके पश्चात् सं. 908, श्री सैयद अब्दुर्रऊफ़!

***सैयद अब्दुर्रऊफ़** (आसाम : मुस्लिम): मैं विनयपूर्वक प्रस्ताव करता हूं:

> ''कि अनुच्छेद 31 के खंड (5) में 'अपने वयस या शक्ति के' इन शब्दों के स्थान पर 'अपने लिंग, वयस अथवा स्वास्थ्य के' यह शब्द रख दिये जायें।''

संशोधनों को देखने में पता चलता है कि जहां तक 'लिंग' शब्द को स्वीकार करने का प्रश्न है, इस परिषद् में सब एकमत हैं। मैंने अपने संशोधन में 'शक्ति' के स्थान पर 'स्वास्थ्य' शब्द जोड़ने का प्रयत्न किया है, क्योंकि मेरे विचार में 'स्वास्थ्य' शब्द में 'शक्ति' शब्द शामिल है और 'स्वास्थ्य' शब्द 'शक्ति' शब्द का परिचायक है, किन्तु 'शक्ति' शब्द 'स्वास्थ्य' शब्द का अवश्य ही परिचायक नहीं

है इसी कारण 'शक्ति' शब्द उपयुक्त नहीं है। यदि हम श्रमिक को नाश से बचाना चाहते हैं, तो हमें उसके स्वास्थ्य का ध्यान रखना चाहिये, केवल उसकी शक्ति का ही नहीं। इसलिये मैं विनयपूर्वक इस संशोधन को परिषद् में स्वीकृति के लिये पेश करता हूं।

***श्री एस.वी. कृष्णमूर्ति राव** (मैसूर): श्रीमान्, मैं प्रस्ताव करता हूं:

''कि अनुच्छेद 31 के खंड (5) में 'शक्ति और स्वास्थ्य' इन शब्दों के स्थान पर 'स्वास्थ्य और शक्ति' यह शब्द रख दिये जायें।''

मेरे संशोधन का उद्देश्य केवल शब्दों के क्रम को बदलना है। मेरी युक्ति केवल यही है कि शक्ति स्वास्थ्य की अनुगामी है और नई शब्दावलि सुनने में अच्छी है। श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव करता हूं।

(*संशोधन सं. 910 से 913 तक पेश नहीं किये गये।*)

***रैवरैण्ड जेरोम डीसूज़ा** (मद्रास : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, आपने इस संशोधन पर, जो कि मैंने और मेरे कुछ मित्रों ने भेजा है, मुझे एक छोटी सी वक्तृता देने का जो अवसर दिया है, मैं उसके लिये आपका आभारी हूं।

मैं तत्काल ही इस परिषद् को एक बार पुन: आश्वासन दे दूं कि मेरा बयान संक्षिप्त होगा और मैं अब जो कारण बताऊंगा उनसे मेरा विचार इस संशोधन पर जोर देने का नहीं है। किन्तु, श्रीमान्, मैं यह बात को कुछ महत्त्वपूर्ण समझता हूं कि जिन कारणों से हमने यह संशोधन भेजा था वह इस परिषद् को समझ लेने चाहियें और यह मोटे-मोटे सिद्धांत जिन पर हमारा निवेदन आश्रित था, समझ लिये जाने चाहियें, ताकि चाहे इस समय तथा वर्तमान रूप में यह संशोधन स्वीकार्य न हो और इस पर जोर देना बुद्धिमानी न हो, किन्तु इसकी भावना हृदयंगम की जा सके और किसी प्रकार इस महत्त्वपूर्ण तथा गम्भीर प्रलेख अर्थात् हमारे विधान में सन्निहित कर दी जा सके।

श्रीमान्, इस परिषद् के कई भागों से शिकायतें हुई हैं कि हमारा विधान हमारे लोगों की आत्मा अथवा स्वाभाविक बुद्धि को प्रतिबिम्बित नहीं करता, और यह विभिन्न वैदेशिक स्रोतों और वैदेशिक विधानों से लिये हुये प्रावधानों की खिचड़ीमात्र है। किसी हद तक ऐसा होना अनिवार्य था, किन्तु मुझे विश्वास है कि विधान

[रैवरैण्ड जेरोम डीसूज़ा]

बनाने वालों ने विधान के इस भाग, निदेशक सिद्धान्तों में कुछ ऐसे सिद्धान्त समवेत करके इस आलोचना का अंशतः निराकरण कर दिया है।

हां, श्रीमान्, हमारे लोगों के विशेष गुणों में एक बात उनकी प्रतीक है, वह है पारिवारिक बंधन की शक्ति एवं पवित्रता, वह है ऐसी पवित्र भावना कि हम गार्हस्थ्य जीवन के संगठन एवं वातावरण के विचारों को पवित्र समझने के आदी हो गये हैं। अतः मुझे विश्वास है कि इस परिषद् का प्रत्येक वर्ग यह अनुभव करेगा कि यह उचित है कि हमारे राष्ट्र एवं प्रजाति की यह प्रबल तथा परंपरागत भावना किसी न किसी प्रकार हमारे विधान में व्यक्त की जाये। श्रीमान्, मैं कह सकता हूं कि यदि हमारे लोगों के गुण, शक्ति तथा पुरुषत्व आक्रमणों एवं परतंत्रता की इतनी शताब्दियों के पश्चात् भी आज बने हुए हैं, तो इसका कारण यही है कि बाह्य एवं राजनीतिक परिवर्तनों के होते हुए भी हमारे देश में परिवार की शक्ति, इसकी आश्रयदाता शक्ति, गुणों और नैतिक शक्ति को प्रेरित करने और बनाये रखने की इसकी क्षमता, कभी कम नहीं हुई, वह कभी पूर्णतया समाप्त नहीं हुई। वर्ण व्यवस्था में जो कुछ खूबियां हैं—और कोई भी यह नहीं कहेगा कि इसमें बुराई ही बुराई है—मैं कह सकता हूं कि वे खूबियां पारिवारिक भावना का ही विस्तार है, और इससे उत्पन्न कौटुम्बिक बंधनों के प्रति आसक्ति सर्वोत्तम तथा सर्वोच्च प्रशंसनीय गुण हैं।

श्रीमान्, हम विधान द्वारा समाज के संगठन का कानून बनाते हैं। हम गांवों की, प्रांतों की, केन्द्र की, आदिवासियों की, अन्य सम्प्रदायों की और समाज के सब प्रकारों की चर्चा कर रहे हैं। और समाज का आधारभूत अंग परिवार है, इसकी सीमा और गुण प्रकृति ने स्वयं निश्चित कर दिये हैं। बाह्य शिष्ट समाज के प्रकार तथा रूप विभिन्न हो सकते हैं तथा बदल सकते हैं, किन्तु परिवार की सीमायें, गुण एवं मूल आकृति प्रकृति द्वारा नियत है। यह भी परिवार के वातावरण की ही खूबी है कि वहां उन सामाजिक गुणों का विकास होता है जिनके आधार पर हम यह विधान बना रहे हैं और जिनकी दृढ़ता के कारण हम विधान को क्रियान्वित कर सकेंगे। पारस्परिक सम्मान, पारस्परिक निर्भरता, प्राधिकार एवं व्यवस्था के प्रति आदरभाव, दूरदर्शिता तथा योजना-निर्माण शक्ति, और यहां तक कि अन्य अंगों से समझौता करने की क्षमता, यह मूल गुण परिवार के घेरे में ही विकसित

होते हैं और अति स्थिर रूप से पाये जाते हैं। हमें अपने राजनैतिक तथा सार्वजनिक जीवन में इन्हीं गुणों की अतीव आवश्यकता होगी। श्रीमान्, इतना ही नहीं; देश-प्रेम भी परिवार के प्रेम का विस्तृत और विकसित रूप ही है। हम अपने देश को मातृभूमि या पितृभूमि कहते हैं। हमें अपने प्राचीन इतिहास की संस्कृति, विस्तार एवं महानता का ज्ञान भी नहीं हो पाता, उससे पूर्व ही हम अपने देश से प्रेम करने लगते हैं; क्योंकि हमें उस छोटे से स्थान से प्रेम होता है जहां कि हमारा जन्म हुआ है, क्योंकि उन स्थानों के दृश्य तथा ध्वनियां तथा नजारे सर्वदा हमारी स्मृति में होते हैं। वे दृश्य एवं ध्वनियां जीवन की सर्वाधिक मूल्यवान स्थायी निधियों में से है। अतः मेरे विचार में यह परिषद् इस अनुरोध को नहीं ठुकरायेगी कि किसी न किसी रूप में पारिवारिक परंपरा के प्रति हमारा स्नेह, सम्मान इस विधान में प्रतिबिम्बित होना चाहिये।

श्रीमान्, मैं जानता हूं कि इस विषय में गम्भीर मतभेद हैं कि इस संशोधन का क्या आशय होना चाहिये, परिवार को किस रूप में रक्षा की जानी चाहिये तथा इसका स्थायित्व किस प्रकार स्थिर रखना चाहिये। श्रीमान्, मैं स्पष्टतया आपके समक्ष संक्षिप्त रूप में बता दूं कि परिवार के स्थायित्व को बनाये रखने के साधनों के विषय में मेरे दिमाग में क्या बात है। सर्वप्रथम, मेरा विश्वास है कि इसका यह आशय है कि अधिकांश रूप में, समाज की सामान्य अवस्था में, कुटुम्ब माता को इतना समय एवं स्वतंत्रता होनी चाहिये कि वह अपना सारा ध्यान अपनी संतान के लालन-पालन तथा परिवार के पोषण में लगा सके। मैं यह नहीं कहता कि वह सर्वदा ऐसा ही करने के लिये बाध्य है—इसमें अपवाद भी होते हैं, तथा कभी-कभी यह सम्भव है कि उसे सार्वजनिक सेवा एवं सार्वजनिक जीवन के उच्च कार्यों में अपनी शक्ति लगाना सुविधाजनक जान पड़े। किन्तु सामान्य अवस्था में यही उसका प्रमुख तथा पवित्र कर्त्तव्य है और इसका यह आशय है कि आजीविका उपार्जन करने वाले को, चाहे वह मज़दूर हो, चाहे वह देश में सबसे दरिद्र हो, इतना पारिश्रमिक मिलना चहिये कि जिससे वह अपनी पत्नी तथा बालकों का निर्वाह कर सके, उसे अपने परिवार के योग्य वेतन मिलना चाहिये। इसी विचार को आधुनिक सामाजिक कानूनों में अधिकाधिक स्वीकार किया जा रहा है। अतः मैं कहता हूं कि उदार अर्थ शास्त्र के नियमों के हिसाब से कार्योनुसार-वेतन के सिद्धान्त पर ही, परिवार के कर्त्ता को उसके काम का वेतन नहीं मिलना चाहिये।

[रैवरैण्ड जेरोम डीसूज़ा]

मैं तो बल्कि यह कहता हूं कि उसे परिवार का कर्त्ता होने की हैसियत से और समाज के संगठन का एक सर्वाधिक महत्त्व का अंग होने की हैसियत से समाज से जीविका प्राप्त करने का अधिकार है, जो जीविका कि अंशत: उस कार्य पर निर्भर नहीं होगी जो कि वह करता है। एक तो यह सिद्धान्त इस संशोधन में सन्निहित है।

दूसरी बात, मुझे विश्वास है कि इस संशोधन का, परिवार की पवित्रता के इस विचार का यह आशय है कि राज्य विवाह-पद्धति को सर्व सम्भव ढंगों से, स्थायी एवं एक-विवाह प्रथा के रूप में, स्वीकार करने एवं प्रोत्साहित करने के लिये तैयार है। मैं इस परिषद् का ध्यान इस बात की ओर दिलाना चाहता हूं कि सब समाजों में अब केवल एक-विवाह प्रथा को ही कानूनी रूप में स्वीकार करने की ओर लोगों का झुकाव है। इसके अतिरिक्त मैं जानता हूं और मैं यहां इस विषय पर बहस नहीं करना चाहता, हमारे देश की महिलाओं की ओर से यह मांग की जाती है कि उन्हें किसी मात्रा में उन बन्धनों को तोड़ने की सुविधा मिलनी चाहिये जो कि सुखद बंधन नहीं रहे हैं। मैं स्वीकार करता हूं कि जब दाम्पत्य जीवन अत्यन्त दु:खद बन जाये तो पृथकत्व युक्तियुक्त हो सकता है। मैं कम से कम, यह अनुरोध करता हूं कि तलाक के लिये बढ़ती हुई सुविधाओं पर राज्य को सावधानी तथा समझदारी से, बल्कि विरोध भावना से गौर करना चाहिये, जिससे कि परिवार का स्थायित्व तथा समृद्धि बनी रहे।

तीसरी बात, और मैं जानता हूं कि इस बारे में भी बहुत से मेरा विरोध करेंगे, पर फिर भी इस अवसर पर और इस परिषद् में यह कह देना आवश्यक है कि यह दुर्भाग्य की बात होगी यदि परिवारों को कृत्रिम रीतियों से सीमित करने के कार्य को राज्य-आश्रय या स्वीकृति या प्रोत्साहन दे। हम भारतीयों को प्रकृति से ऐसी वृहद निधि प्राप्त हुई है कि हमारी सम्पत्ति के महानतम साधन अर्थात् हमारे देश के लोगों की, हमारी प्रजाति के श्रमशील नर-नारियों की वृद्धि से हमारे मन में किसी प्रकार का भय न होना चाहिये। अंत में, मैं एक और बात कहूंगा जो कि परिवार की पवित्रता, स्थायित्व एवं स्थिरता के इस विचार में सन्निहित होनी चाहिये। मैं अनुरोध करूंगा कि माता-पिता के अधिकारों का सम्मान होना चाहिये, बच्चों के विषय में माता-पिता के सब उचित प्राधिकारों को मानना चाहिये। हमें विशेषतया यह मान लेना चाहिये कि माता-पिता को ऐसी व्यवस्था करने का अधिकार

है कि उनके बालकों का ऐसी परम्परा एवं श्रद्धा के वातावरण में पालन हो जो कि माता-पिताओं को प्रिय हो, जिससे कि उनके परिवार का सुखी वातावरण, एकरूपता और अभिन्नता, जिनका कि परिवार में साम्राज्य होना चाहिये, नष्ट न हों। यह है मेरा आशय—यह गम्भीर है और बहुत सी बातों पर इसका प्रभाव पड़ता है, किन्तु मुझे विश्वास है कि यह हमारे देश के अत्यधिक बहुमत को स्वीकार्य है—यही है इस संशोधन का आशय। किन्तु जैसा कि मैं पहले कह चुका हूं, मुझे पता चला है कि इस रूप में इसका अर्थ स्पष्ट न होने के कारण, शायद इस संशोधन पर गम्भीर मतभेद हो, अतः मैं इस समय इस पर जोर न देने के लिये तैयार हूं। किन्तु मैं चाहता हूं कि यह परिषद् और मेरे मान्य तथा आदरणीय मित्र किसी न किसी प्रकार किसी भी समय तथा किसी भी रूप में ऐसी बात रखें, जिससे कि भावी संतान को भी वही नियामतें प्राप्त हों जो कि उन्हें और हमें उत्तराधिकार में मिली हैं और जिनका हमने उपभोग किया है। वे इस बात को मानें कि किसी देश की महत्ता बनाने के लिये जो महान गुण—व्यक्तिगत महानता—चाहिये, वह सर्वाधिक प्रारम्भिक काल में तथा गार्हस्थ्य के वातावरण में ही विकसित होते हैं। हम आशावादी तथा प्रजातंत्रवादी हैं, किन्तु हम जानते हैं कि मनुष्य के स्वभाव में अनेक बुरी प्रवृत्तियां होती हैं, तथा वे प्रवृत्तियां उसकी अच्छाइयों पर विजय न पा सकें तथा उसकी संकीर्ण एवं समाज-विरोधी भावनायें उसके सद्गुणों को आच्छादित न कर सकें, इसलिये इस कोमल आयु में ही स्थायी सामाजिक सदाचार का बीजारोपण किया जाना चाहिये। अतः मेरे सम्मानित मित्रों, मैं आपसे कहता हूं कि आप उस निधि की ओर ध्यान दें, उस पर विचार करें, जिसकी कोमलतम तथा पवित्रतम स्मृतियां आपके पास हैं, उन ध्वनियों तथा उन आकृतियों की ओर ध्यान दें और आपको उस वातावरण तथा उन लोगों से जो कुछ मिला है, उसका मूल्य समझते हुए आप कुछ ऐसी व्यवस्था करें कि जिससे इस देश की भावी संतान को भी वही आनन्द प्राप्त हो।

***श्री वी.सी. केशवराव** (मद्रास : जनरल): मैं संशोधन सं. 917 को, जो कि मेरे नाम में है, पेश नहीं करता, किन्तु मैं बाद में मूलाधिकारों के सम्बन्ध में इसे पेश करने का अधिकार सुरक्षित रखता हूं।

***पं. ठाकुरदास भार्गव** (पूर्वी पंजाब : जनरल): मैं इस समय संशोधन सं. 920 पेश नहीं कर रहा हूं, किन्तु जब हम मूलाधिकारों पर विचार करेंगे तब इसे मैं पेश करूंगा।

[पं. ठाकुरदास भार्गव]

मैं संशोधन संख्या 923 भी पेश नहीं कर रहा हूं। इसके बारे में भी वही बात है जो कि मैंने 920 के विषय में कही है।

***उपाध्यक्ष:** अब इस अनुच्छेद पर व्यापक पर्यालोचन हो सकता है।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना** (संयुक्तप्रांत : जनरल): यह ऐसा खंड है जो कि हमारे विधान में अत्यन्त आधारभूत है। जिस प्रकार के संशोधन रखे गये हैं, उनसे भी पता चलता है कि यह सारे विधान के मूल तक जाता है। निसंदेह मेरी सहानुभूति प्रो. के.टी. शाह के संशोधनों के साथ है। उन्होंने दो संशोधन रखे हैं जिनका वास्तव में यह आशय है कि इस खंड में हमें यह बात रख देनी चाहिये कि हमारे राज्य की व्यवस्था ''समाजवादी'' होगी। मैंने प्रस्तावना में एक संशोधन भेजा है जिसमें मैंने कहा है कि 'संघ' शब्द के पहले 'समाजवादी' शब्द जोड़ देना चाहिये। मैं स्वयं तो यह अनुभव करता हूं कि उन्होंने जो विशेष संशोधन रखे हैं, वे बड़े महत्त्वपूर्ण हैं और मैं अपने मित्र डा. अम्बेडकर से अनुरोध करता हूं कि वे कम से कम इन संशोधनों का आशय इस विधान में कहीं न कहीं समाविष्ट कर दें। खंड 31 के भाग (2) में लिखा है:

> ''...समाज के भौतिक साधनों का स्वामित्व तथा नियंत्रण इस प्रकार बंटा हो कि जिससे सार्वजनिक हित का सर्वोत्तम अनुसेवन हो।''

अब ''समाज के भौतिक साधनों के स्वामित्व तथा नियंत्रण को इस प्रकार बांटना कि जिससे सार्वजनिक हित का सर्वोत्तम अनुसेवन हो'' यह एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त की अतीव विस्तृत परिभाषा है। यह वर्णन इतना व्यापक है कि कोई भी आर्थिक पद्धति इस पर आधारित हो सकती है। यह समाजवादी आर्थिक प्रणाली का भी आधार बन सकता है, जिसमें कि देश के सब साधन राज्य की सम्पत्ति होते हैं तथा सम्पूर्ण समुदाय के कल्याणार्थ प्रयुक्त होते हैं। किन्तु अगली परिषद् में बहुमत यह भी कह सकता है कि रुज़वैल्ट ने जो नई प्रणाली (न्यू डील) का आविष्कार किया, वही सर्वोत्तम पद्धति है और इसे स्वीकार कर लेना चाहिए। यह खण्ड इस बात को भावी संसद् पर छोड़ देता है कि वह अपनी पसंद की सर्वोत्तम योजना बनाये। किन्तु मैं तो यह अनुभव करता हूं कि हमें आज न्यूनातिन्यून यह बात रख देनी चाहिये कि देश के मूलोद्योगों पर राज्य का स्वामित्व रहेगा। 1921 से यह कांग्रेस का एक महत्त्वपूर्ण कार्यक्रम रहा है। कांग्रेस ने इस सिद्धान्त

को स्वीकार कर लिया है कि मूलोद्योगों पर राज्य का नियंत्रण होगा। अभी हाल ही में कांग्रेस ने जो समिति नियुक्त की थी, उसकी रिपोर्ट में चर्चा की गई थी कि मूलोद्योगों का स्वामी राज्य होना चाहिये। इस समय हमने मूलोद्योगों के राष्ट्रीयकरण का कार्य दस वर्ष के लिये स्थगित कर दिया है। किन्तु मैं यह अवश्य अनुभव करता हूं कि हमें अपने विधान में यह बात रख देनी चाहिये कि यह हमारी मूल नीति है। यदि हम विधान में ही यह बात नहीं रखेंगे कि मूलोद्योगों का राष्ट्रीयकरण किया जायेगा तथा उनका उपयोग मुख्यत: राष्ट्र की आवश्यकताओं को पूरा करने में ही किया जायेगा, तो हम महान् विश्वासघात के दोषी होंगे। आज इस सिद्धान्त को लागू नहीं करना है, तो भी हमें निदेशक सिद्धान्तों सम्बन्धी इस खंड (2) में यह बात अवश्य रख देनी चाहिये कि मूलोद्योगों का स्वामी राज्य होगा। कांग्रेस के अनुसार देश के भौतिक साधनों के वितरण की यही सर्वोत्तम प्रणाली है। अत: मेरे विचार में प्रो. शाह के संशोधन ने इस मूल सिद्धान्त की ओर ही ध्यान आकृष्ट किया है।

उनका दूसरा संशोधन एकाधिकारों के विरुद्ध है और मुझे उनसे पूर्ण सहानुभूति है। एकाधिकारों की प्रणाली को सर्वत्र अति बुरा माना गया है। अमरीका में राष्ट्र की 54 प्रतिशत सम्पत्ति के स्वामी 60 परिवार हैं और कहा जाता है कि इन औद्योगिक प्रतिष्ठानों के 12 संचालक अमरीका के मंत्रि-मंडल के मंत्रियों से भी अधिक शक्तिशाली हैं। अतएव मेरे विचार में हमें अन्य देशों से शिक्षा अवश्य लेनी चाहिये तथा अपने विधान में ऐसी व्यवस्था कर देनी चाहिये कि भारत में एकाधिकारों को नहीं रहने दिया जायेगा। इस कारण मुझे विश्वास है कि डा. अम्बेडकर इस विचार को उपयुक्त संशोधन द्वारा इस खंड में सन्निहित कर देंगे।

मैं जानता हूं कि उनके मसौदे में एक गुण है कि उन्होंने यह बात अनिश्चित रहने दी है और मुझे यह आशा है कि वे इस बात को इस खंड में समाविष्ट कर देंगे। इस परिषद् को, जिसमें कि ऐसे एक दल का बहुमत है, जिसने कि इन सिद्धान्तों को पहले ही स्वीकार कर लिया है, इन सिद्धान्तों को विधान में रख देना चाहिये। जैसा मैंने कहा है, डा. अम्बेडकर ने सारी बात अनिश्चित रहने दी है और यह सम्भव है कि प्रौढ़ मताधिकार के आधार पर निर्वाचित परिषद् यह व्यवस्था कर देगी कि राज्य मूलोद्योगों का स्वामी होगा और उन पर नियंत्रण रखेगा।

[प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना]

मैंने श्री कामत के एक संशोधन (875-ए) में एक संशोधन की सूचना दी थी; श्री कामत ने अपना यह संशोधन पेश नहीं किया। उसमें मेरा उद्देश्य यह था कि 'राज्य वृद्धि का पोषण करेगा' इन शब्दों के स्थान पर 'राज्य विकास को प्रोत्साहित करेगा' यह शब्द रख दिये जायें। संशोधित संशोधन इस प्रकार होता: 'राज्य आर्थिक एवं सामाजिक प्रजातंत्र के विकास को प्रोत्साहित करेगा और उसी उद्देश्य से अपनी नीति का ऐसा संचालन करेगा...'। मैंने सुझाव दिया था कि यह संशोधन अनुच्छेद 31 की प्रथम पंक्ति में शामिल कर दिया जाये। उस दिन डा. अम्बेडकर ने अपना विचार बताया था कि हम ऐसा आर्थिक प्रजातंत्र चाहते हैं जिसका आधार 'एक मनुष्य, एक मूल्य' हो, मेरा सुझाव उसके अनुसार था। यह एक महान् आदर्श है और उन्हें बधाई देता हूं कि उन्होंने उस महान् आदर्श को व्यक्त किया। इन शब्दों के साथ मैं परिषद् से इस अनुच्छेद पर विचार करने का निवेदन करता हूं और मुझे आशा है कि डा. अम्बेडकर मेरी आलोचना के पीछे निहित भावना को स्मरण रखेंगे।

***श्री यदुवंश सहाय** (बिहार : जनरल): आपकी कृपापूर्ण अनुमति से, श्रीमान्, मैं आशा करता हूं कि इस समय परिषद् के सामने जो अनुच्छेद 31 विचारार्थ प्रस्तुत है, मैं उस पर कुछ कहूं तो परिषद् मुझे क्षमा करेगी।

श्रीमान्, यह कहा गया था, सम्भवत: कल ही, कि इस अध्याय का यह अनुच्छेद आर्थिक लोकतंत्र का घोषणा-पत्र है। यह भी कहा गया था कि इस अध्याय में तथा इस अनुच्छेद में हम समाजवाद एवं अन्य वादों के कीटाणु पा सकते हैं। यह भी कहा गया था कि यह अध्याय निर्धन लोगों का अधिकार-पत्र है। मैं अत्यन्त सम्मान के साथ निवेदन करता हूं कि इस अध्याय में अनुच्छेद 31 एक धुरा है, जिसके चारों ओर सब कुछ घूमेगा। इस अनुच्छेद में खंड (3) सबसे महत्त्वपूर्ण हैं, जिस पर मैं इस परिषद् का ध्यान सादर दिलाऊंगा। किन्तु मुझे खेद है कि मेरे मित्र प्रो. शाह के संशोधन का समर्थन करना मेरे लिये सम्भव नहीं है, क्योंकि मेरा यह सादर निवेदन है कि यह संशोधन अव्यवस्थित शब्दों में है। किन्तु मैं इस परिषद् की जानकारी के लिये यह कह दूं कि जहां तक उनके संशोधन में सन्निहित सिद्धांतों का सम्बन्ध है, मैं उनका समर्थन करता हूं। इसके आशय का मैं भी समर्थन करता हूं। मैं नहीं समझ सकता कि यह महान् परिषद्, जो प्रत्येक देश में केवल एक ही बार समवेत होती हैं, इस बात के लिये इतनी उत्सुक क्यों नहीं है कि स्पष्टतया और साहस के साथ इस अनुच्छेद में यह बात शामिल

कर दे, कि देश के उत्पादन-साधन तथा प्राकृतिक अथवा भौतिक साधन समाज की तथा इसके द्वारा राज्य की सम्पत्ति होंगे। मैं इस बात को नहीं समझ सकता, यद्यपि अधिकांश संशोधनों को यदि आप गौर से देखें, तो पता लगेगा कि वे प्रो. शाह के संशोधन में सन्निहित सिद्धांतों के अनुकूल हैं। मैं नहीं समझ सकता कि क्या कारण है कि कांग्रेस, जो कि यहां अत्यधिक बहुमत प्राप्त दल है, इस बात पर जोर नहीं दे रही।

कल एक माननीय सदस्य ने कहा था कि यह राजनीतिक विषय है और राजनीतिक दलों को ऐसे संशोधन नहीं रखने चाहियें। मैं यह सुनकर बहुत चकित हुआ। विधान-निर्माण राजनीतिक दलों का काम है। जहां तक उस संस्था का सम्बन्ध है, जिसका सदस्य होने का मुझे सम्मान प्राप्त है, अर्थात् कांग्रेस का सम्बन्ध है, हम कांग्रेसजनों ने कई मंचों से करोड़ों लोगों को आश्वासन दिये हैं कि जहां तक राज्य के उत्पादन-साधनों तथा प्राकृतिक साधनों का सम्बन्ध है, वे कुछ थोड़े से इष्ट लोगों के हाथों में नहीं छोड़े जायेंगे। हम अपने वचन को कैसे छोड़ सकते हैं। आखिर, यह निदेशक सिद्धान्त है। मैं आप से यह नहीं कह रहा हूं कि ऐसी व्यवस्था कर दीजिये कि पूंजीपति तथा देश के बड़े धनी लोगों को खानों तथा खनिज पदार्थों के प्रबन्ध का अवसर ही न मिले सके। यह केवल निदेशक सिद्धान्त है। क्या हम इसे अपना उद्देश्य नहीं रखना चाहते कि इस देश के सारे उत्पादन-साधन तथा प्राकृतिक साधन राज्य अथवा समुदाय के स्वामित्व में होने चाहियें। श्रीमान्, मुझे खेद है कि पूंजीपतियों ने यह आडम्बर खड़ा कर दिया है कि यदि आप ऐसी बातें करेंगे, तो हम उत्पादन करना बन्द कर देंगे। मैं जानता हूं कि यहां अधिकांश मित्र पूंजीपतियों के इस आडम्बर से नहीं डरेंगे, क्योंकि आजकल उत्पादन समाज के कल्याण के लिये नहीं होता। यह पूंजीपतियों के कल्याण के लिये है। वे लाभ के लिये उत्पादन करते हैं। इस परिषद् के माननीय सदस्य मेरे से अधिक अच्छी तरह जानते हैं कि वे लाभार्थ उत्पादन करते हैं और जब तक उन्हें लाभ प्राप्त हुए जायेगा वे उत्पादन करते जायेंगे; जब नहीं होगा, वे नहीं करेंगे। अतएव हमें इस नारे से नहीं डरना चाहिये। जहां तक भारत सरकार का सम्बन्ध है, कहा जाता है कि किसी ने प्रधानमंत्री का हवाला देते हुए कहा था कि दस वर्ष के बाद राष्ट्रीयकरण होगा। पत्रों के समाचार के अनुसार सर आदीश्वर दलाल ने कहा है कि प्रधानमंत्री ने कुछ कह दिया था, इसलिये उत्पादन में बाधा पड़ रही है।

[श्री यदुवंश सहाय]

श्रीमान्, इस अध्याय में और विशेषत: इस अनुच्छेद में क्या हम यह सुझाव देने नहीं जा रहे हैं कि हमें अन्ततोगत्वा उनका राष्ट्रीयकरण करना है, क्या हम यह बात नही कहने जा रहे हैं कि यह राष्ट्र का उद्देश्य है, यह राष्ट्र का लक्ष्य है। हमने अगस्त के प्रस्ताव में कहा था कि भूमि कृषक की सम्पत्ति है। आपने यहां विशाल एवं ज्योतिर्मय शब्द रखे हैं—सामाजिक न्याय, राजनीतिक न्याय तथा आर्थिक न्याय। वे अतीव सुन्दर एवं महान् शब्द हैं, किन्तु वे करोड़ों श्रमिकों से बहुत दूर दिखाई पड़ते हैं। हम यहां क्यों न कह दें कि आज नहीं कल नहीं, पर दूर भविष्य में समाज उन वस्तुओं का स्वामी होगा जो प्रकृति तथा ईश्वर से उसे दान में मिली हैं। मैं समाजवादी दल का सदस्य नहीं हूं, किन्तु मैं उस कांग्रेस का सदस्य हूं जिसके यहां कई सदस्य हैं। क्या मैं डा. अम्बेडकर से अनुरोध करूं, जो कि देश के पददलित अछूतों के प्रतिनिधि होने का दावा करते हैं, कि वे हमारे हृदयों से इस आशा को मिटा न दें कि भविष्य में समाज के प्राकृतिक साधन थोड़े से विशेषाधिकार-प्राप्त लोगों की सम्पत्ति नहीं होंगे, अपितु देश के निर्धन लोगों की सम्पत्ति होंगे, सबके लाभ तथा कल्याण के लिये होंगे।

***श्री एस. नागप्पा** (मद्रास : जनरल): श्रीमान्, यही एक ऐसा खंड है, जिससे जनसाधारण में भविष्य के लिये कुछ आशा का संचार हो सकता है। खंड (2) तथा (3) निर्धन लोगों के लाभार्थ रखे गये हैं। निस्संदेह, यह अच्छा होता यदि इस खंड को इस अनिश्चित भाषा में न रख कर अधिक सुनिश्चित शब्दो में रखा जाता। सामान्य मुनष्य के नाते, साधारण मनुष्य के नाते, मैं इन खंडों में भविष्य के लिये कुछ आशा-किरण देख सकता हूं। यहां जो माननीय सदस्य समवेत हुए हैं, उन सबका उद्देश्य यथा-सम्भव शीघ्र ही समाजीकरण करना है। जब तक यह खंड हैं, भारत में पूंजीवाद के फलने-फूलने की कोई सम्भावना नहीं है। मैं मसौदा-समिति और उसके प्रधान का अत्यन्त कृतज्ञ हूं कि उन्होंने विशेषत: यह खंड रखे हैं, और मेरी केवल यही शिकायत है कि उन्हें अधिक सुनिश्चित भाषा में नहीं रखा गया। श्रीमान्, आज के यही नारे हैं कि जनोपयोगी सेवाओं को नगर-समितियों के अधिकार में दे दिया जाये तथा उद्योगों एवं उत्पादन-साधनों का राष्ट्रीयकरण कर

दिया जाये और जब तक यह बातें नहीं होती तब तक जनसाधारण के लिये कोई आशा नहीं है। आज भूमि कुछ लोगों के हाथों में संकेंद्रित है और किसान अपने आपको गम्भीर कठिनाइयों में पाता है। एक मित्र भारत में सामंतशाही समाप्त करने के विषय में संशोधन रख रहे थे। जब ऐसी अनुभूतियां होंगी जो शताब्दियों से पीड़ित हैं। उनसे कई घंटो तक तथा कई दिनों तक बिना पारिश्रमिक काम करने की आशा की जाती है, जब कि कारखानों में निश्चित कार्य-समय होता है। मुझे बहुत प्रसन्नता है, श्रीमान्, कि मूल अधिकारों में बेगार तथा बलात्श्रम को रोकने के लिये प्रावधान रखा गया है। मैं विधान निर्माताओं से निवेदन करता हूं कि वे इस बात का ध्यान रखे कि इसका प्रत्येक शब्द कार्यान्वित किया जाये। सद्दिच्छाओं से या आडम्बरमय शब्दों के रखने से कोई लाभ नहीं है।

इन शब्दों के साथ मैं इस अनुच्छेद का समर्थन करता हूं।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद** (बिहार : जनरल): श्रीमान्, क्या मैं बोल सकता हूं?

***उपाध्यक्ष:** मुझे अत्यन्त खेद है। मेरे विचार से पर्याप्त पर्यालोचन हो चुका है। डा. अम्बेडकर।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** उपाध्यक्ष महोदय, श्रीमान्, इस अनुच्छेद में जो बहुत से संशोधन प्रस्तुत किये गये हैं, उनमें केवल चार हैं, जो विचारार्थ शेष हैं। सर्वप्रथम मैं श्री कृष्णमूर्ति राव के संशोधन को लेता हूं। यह केवल शाब्दिक संशोधन है और मैं तुरन्त ही कहता हूं कि मैं इस संशोधन को स्वीकार करने के लिये सर्वथा तैयार हूं।

तत्पश्चात् मेरे मित्र प्रो. के.टी. शाह द्वारा प्रस्तुत तीन संशोधन रह जाते हैं। उनका प्रथम संशोधन है कि 'नागरिकों' शब्द के स्थान पर 'प्रत्येक नागरिक' यह शब्द रख दिये जायें। यदि वे केवल यही संशोधन रखते तो मुझे उनके संशोधन को स्वीकार करने में कोई बहुत अधिक कठिनाई नहीं होती, किन्तु वे 'समान रूप से नर और नारी' इन शब्दों को भी हटाना चाहते हैं जिस पर मुझे बहुत आपत्ति

[माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर]

है। अतः मैं उनसे कहूंगा कि वे अपने इस विशेष संशोधन पर जोर न दें तथा विश्वास रखें कि जब इस विधान पर इस परिषद् में विचार हो चुकेगा तथा यह शाब्दिक परिवर्तनों के लिये मसौदा-समिति के पास पुनः भेजा जायेगा, तब मैं उनके सुझाव का इसमें समावेश करने के लिये बिल्कुल तैयार होऊंगा, क्योंकि मैं बिल्कुल समझता हूं कि 'प्रत्येक नागरिक' ये शब्द 'नागरिकों' शब्द से अधिक अच्छे हैं।

उनके अन्य संशोधनों, अर्थात् अनुच्छेद 31 के उप-खंड (2) और (3) के स्थान पर उनके अपने खंड रखने के विषय में मुझे बस यही कहना है कि मैं प्रो. शाह के संशोधनों पर विचार करने के लिये बिल्कुल तैयार हो जाता, यदि वे सिद्ध कर देते कि वे अपने खंड रख कर जो बात करना चाहते हैं वह विद्यमान भाषा के अंतर्गत होना सम्भव नहीं है। जहां तक मैं देख सकता हूं, मेरे विचार में मसौदे में जो भाषा रखी गई है वह अधिक विस्तृत है, जिसमें वे भी बातें सम्मिलित हैं जो प्रो. शाह ने रखी हैं और इस कारण मेरी समझ में नहीं आता कि इस खंड की जगह, जो कि एक उद्देश्य विशेष से जानबूझ कर व्यापक भाषा में रखा गया है, इन सीमित खंडों को रखने की क्या आवश्यकता है। अतः मैं उनके दूसरे तथा तीसरे संशोधनों का विरोध करता हूं।

***उपाध्यक्षः** अब मैं संशोधनों पर एक-एक करके मत लूंगा।

प्रश्न यह है:

''कि अनुच्छेद 31 के खंड (1) में से 'समान रूप से नर और नारी' यह शब्द निकाल दिये जायें।''

प्रस्ताव अस्वीकृत हो गया।

***उपाध्यक्षः** प्रश्न यह है:

कि अनुच्छेद 31 के खंड (1) में 'कि नर और नारी सभी नागरिकों को समान रूप से...पर्याप्त अधिकार हो' इन शब्दों के स्थान पर 'प्रत्येक नागरिक को...पर्याप्त...अधिकार हो' यह शब्द रख दिये जायें।''

प्रस्ताव अस्वीकृत हो गया।

***उपाध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

''कि अनुच्छेद 31 के खंड (2) के स्थान पर निम्नलिखित खंड रख दिया जाये:

'(2) कि देश के प्राकृतिक साधनों का, जो कि खानों, खनिज सम्पत्ति, वनों, नदियों तथा बहते हुए जलों के रूप में एवं देश के तट के साथ-साथ सागर के रूप में हैं, स्वामित्व, नियंत्रण तथा प्रबंध सामूहिक रूप से देश में निहित होगा तथा देश के ही अधीन होगा और समाज की ओर से राज्य ही उनका विकास करेगा तथा उन्हें उत्पादन कार्य में लगायेगा, जो कि (अर्थात् राज्य) केन्द्रीय एवं प्रांतीय सरकारों अथवा स्थानीय शासक प्राधिकारी अथवा कानूनी निगम द्वारा प्रतिरूपित होगा, जैसे भी संसद् के कानून द्वारा व्यवस्था की जायें।'

प्रस्ताव अस्वीकृत हुआ।

***उपाध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

''कि अनुच्छेद 31 के खंड (3) के स्थान पर निम्नलिखित खंड रखा जाये:

'(3) कि भौतिक सम्पत्ति के उत्पादन में, सामाजिक सेवा में, अथवा सार्वजनिक हित की चीजों में किसी रूप में गैर-सरकारी एकाधिकारी नहीं होंगे और न ही उत्पादन और वितरण के साधनों का गैर-सरकारी हाथों में संकेन्द्रण होगा और ऐसे संकेन्द्रण या एकत्रीकरण को रोकने के लिये राज्य प्रत्येक उपाय काम में लायेगा।'

प्रस्ताव अस्वीकृत हो गया।

***उपाध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

''कि अनुच्छेद 31 के खंड (5) में 'संकेन्द्रण' शब्द के स्थान पर 'अनुचित संकेंद्रण' यह शब्द रख दिये जायें।''

प्रस्ताव अस्वीकृत हो गया।

***उपाध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

''कि अनुच्छेद 31 के खंड (5) में 'abused' शब्द के स्थान पर 'exploited' शब्द और 'economic necessity' के स्थान पर 'want' शब्द रख दिये जायें।''

प्रस्ताव अस्वीकृत हो गया।

***उपाध्यक्षः** प्रश्न यह है:

''कि अनुच्छेद 31 के खंड (5) में 'उनकी आयु' इन शब्दों के स्थान पर 'उनकी आयु, लिंग' यह शब्द रख दिये जायें।''

प्रस्ताव अस्वीकृत हो गया।

***उपाध्यक्षः** प्रश्न यह है:

''कि अनुच्छेद 31 के खंड (5) में 'उनको आयु या शक्ति के' इन शब्दों के स्थान पर 'उनके लिंग, आयु या स्वास्थ्य के' यह शब्द रख दिये जायें।''

प्रस्ताव अस्वीकृत हो गया।

***उपाध्यक्षः** प्रश्न यह है:

''कि अनुच्छेद 31 के खंड (5) में 'कि उनकी शक्ति और स्वास्थ्य' इन शब्दों के स्थान पर 'कि उनके स्वास्थ्य और शक्ति' यह शब्द रख दिये जायें।''

प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

***उपाध्यक्षः** प्रश्न यह है:

''कि अनुच्छेद 31 संशोधित रूप में विधान का भाग हो।''

प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

अनुच्छेद 31, संशोधित रूप में, विधान में जोड़ दिया गया।

***उपाध्यक्षः** अब हम अनुच्छेद 31-ए को लेंगे।

अनुच्छेद 31-ए

***श्री एम. अनंतशयनम् आयंगर** (मद्रास : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, संशोधन संख्या 927 मेरे नाम में है, किन्तु श्री संतानम् ने इस संशोधन में एक संशोधन दिया है जो इसके स्थान पर रखने के लिये हैं। मैं देखता हूं कि उसकी भाषा अधिक अच्छी है। श्रीमान्, आपकी आज्ञा से मेरे संशोधन के स्थान पर उन्हें अपना संशोधन रखने को अनुमति दी जाये। यदि आप चाहते हैं कि मैं नियमित रूप से अपना संशोधन प्रस्तुत करूं तो मैं ऐसा कर दूंगा, किन्तु मैं 31-ए के स्थान

पर उनका संशोधन स्वीकार करने के लिये तैयार हूं। आप जैसा भी निदेश दें, मैं वैसा ही करने को तैयार हूं।

***उपाध्यक्षः** श्री सन्तानम् प्रस्ताव रख सकते हैं।

***माननीय श्री के. सन्तानमः** श्रीमान्, मैं विनयपूर्वक प्रस्ताव करता हूंः

''कि अनुच्छेद 31 के पश्चात् निम्नलिखित नया अनुच्छेद जोड़ दिया जायेः

'31-ए. राज्य ग्राम-पंचायतों का संगठन करने के लिये कार्यवाही करेगा और उन्हें स्वशासन के अंगों के रूप में प्रकार्य करने देने के लिये उन्हें यथावश्यक शक्ति एवं प्राधिकार प्रदान करेगा।' ''

श्रीमान्, मुझे इस खंड की आवश्यकता को विस्तार से बताने की जरूरत नहीं है। कई माननीय सदस्यों ने ग्राम-पंचायतों के विषय में ऐसे ही संशोधन भेजे हैं, किन्तु उन्होंने इसके साथ स्वावलम्बन की तथा अन्य शर्तें लगा दी हैं, जिन्हें कि हम में से कइयों ने निदेशनों में रखना वांछनीय नहीं समझा। ग्राम-पंचायतों को क्या शक्तियां दी जानी चाहियें, उनके क्या प्रदेश होने चाहियें तथा इसके क्या प्रकार्य होने चाहियें। प्रांत-प्रांत तथा राज्य-राज्य में विभिन्न होंगे और यह वांछनीय नहीं है कि इस विधान में कोई अटल निदेशन दिये जायें। कई बहुत छोटे-छोटे ग्राम हो सकते हैं, जो इतने दूर-दूर हों कि 50 परिवारों के लिये ही हमें एक ग्राम पंचायत की आवश्यकता हो; अन्य स्थानों पर उन्हें एक वर्ग में एकत्र करना वांछनीय हो सकता है ताकि वे छोटे नगर बन जायें तथा कुशलतापूर्वक लगभग नगर-समितियों का सा प्रबंध चला सकें। मेरे विचार में यह प्रांतीय धारा सभाओं पर छोड़ दिया जाना चाहिये। यहां पर केवल यही प्रयत्न किया गया है कि एक सुनिश्चित तथा असंदिग्ध निदेशन दे दिया जाये कि राज्य ग्राम-पंचायतों के संगठन करने के लिये कार्यवाही करेगा तथा उन्हें स्वशासन के अंगों के रूप में प्रकार्य करने देने के लिये यथावश्यक शक्तियां तथा प्राधिकार प्रदान करेगा। जितने संशोधन आये हैं उन सब में यह बात समान है कि इस देश में स्वशासन तथा स्वतंत्रता का सम्पूर्ण ढांचा संगठित ग्राम्य जीवन पर आश्रित होना चाहिये और यही बात इस संशोधन का सैद्धांतिक आधार रखी गई है। मुझे आशा है कि इसे एक मत से स्वीकार कर लिया जायेगा। धन्यवाद, श्रीमान्।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** श्रीमान्, मैं संशोधन को स्वीकार करता हूं।

(इसी समय सेठ गोविंददास बोलने के लिये खड़े हुए)

***उपाध्यक्षः** यदि आप कुछ और पर्यालोचन करना चाहते हैं, तो प्रो. रंगा अपना संशोधन प्रस्तुत करें, तत्पश्चात् कर सकते हैं।

***एक माननीय सदस्यः** प्रो. रंगा यहां नहीं हैं।

***उपाध्यक्षः** मैं द्विविधा में हूं। यह संशोधन स्वीकृत हो चुका है। यदि मैं एक वक्ता को अवसर दूं तो सारे प्रश्न पर फिर बहस करनी होगी। मैं इस विषय में विशेषज्ञों के परामर्श को मूल्यवान समझूंगा।

***श्री एम. अनंतशयनम् आयंगरः** यदि आप मुझे अनुमति दें तो मैं केवल उस प्रणाली का हवाला दूं जो कि इस परिषद् में तब प्रयोग की जाती है जब कि यह परिषद् व्यवस्थापिका सभा के रूप में बैठती है। यदि एक सदस्य जो विधेयक का प्रस्तावक है, किसी संशोधन को स्वीकार भी कर ले, तो वह यह संकेत मात्र होता है कि अन्य सदस्यों को क्या कार्यविधि अपनानी चाहिये। वे तत्पश्चात् भी वक्तृतायें दे सकते हैं तथा प्रस्तावक को उनके बोलने के बाद उत्तर देने का सदा अधिकार होता है। कई विषयों पर जिनमें सिद्धांत का प्रश्न नहीं होता, पर्यालोचन संक्षिप्त करने के हेतु लोग यह जानना चाहते हैं कि सरकार का क्या दृष्टिकोण होगा। यदि यह व्यर्थ समझा जाये तो वे उस विषय पर शायद अधिक जोर नहीं दें, और यही कारण है कि डा. अम्बेडकर ने कह दिया है कि वे इस संशोधन को स्वीकार करते हैं। अभी भी जब वक्तृतायें अथवा पर्यालोचन समाप्त हो जायें तब वे उत्तर दे सकते हैं यह अति महत्त्वपूर्ण विषय है तथा प्रत्येक सदस्य इस पर कुछ प्रकाश डालना चाहता है।

***उपाध्यक्षः** ऐसा है तो मैं सर्वप्रथम श्री प्रकाशम् से बोलने का अनुरोध करता हूं।

***श्री टी. प्रकाशम्** (मद्रास : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, मुझे प्रसन्नता है कि सरकार ने इस संशोधन को सुन्दरता से स्वीकार कर लिया है और वह इसे संविधान में समाविष्ट करने के लिये सहमत हो गई है। हमें संविधान के निर्माण के समय प्रारम्भ में ही इस संशोधन को रखने का प्रयत्न करना चाहिये था।

***श्री विश्वम्भर दयालु त्रिपाठी** (संयुक्तप्रांत : जनरल): श्रीमान्, मुझे पता नहीं चलता कि वे किस सरकार की चर्चा कर रहे हैं।

***श्री टी. प्रकाशम्:** आज जिस प्रकार सरकार स्थापित है, मैं उसी की चर्चा कर रहा हूं।

यह ऐसा विषय है जो कि देश को और इस परिषद् के सदस्यों को बहुत प्रिय है। उन्होंने व्यापक पर्यालोचन में जिस प्रकार भाग लिया तथा इस बात को पर्यालोचन में सबसे आगे रखा कि यह बात विधान में ही रखी जानी चाहिये, उससे यह प्रगट हो गया कि यह विषय उन्हें कितना प्रिय है। डा. राजेन्द्र प्रसाद ने भी, जो कि विधान-परिषद् के अध्यक्ष हैं, इसी पक्ष में अपना मत व्यक्त किया है कि ग्राम-पंचायतों को ही विधान का आधार बनाना चाहिये।

***श्री विश्वम्भर दयालु त्रिपाठी:** सरकार का हमारे पर्यालोचनों से क्या सम्बन्ध है?

***उपाध्यक्ष:** उनका संकेत विधान-परिषद् के अध्यक्ष की ओर था, सरकार की ओर नहीं।

***श्री टी. प्रकाशम्:** मैंने सरकार की चर्चा नहीं की है। धन्यवाद।

डा. राजेन्द्र प्रसाद ने अपना मत इस पक्ष में व्यक्त किया है कि ग्राम-पंचायतों को उस समस्त विधान का आधार बनाना चाहिये, जो विधान आजकल हम बना रहे हैं। श्रीमान्, दस मई को डा. राजेन्द्र प्रसाद ने इस विषय पर अपने विचार प्रगट किये थे। वैधानिक परामर्श दाता सर बी.एन. राव ने जब इस विषय पर विचार किया तब उन्होंने भी इस विषय से सहानुभूति प्रगट की, किन्तु उन्होंने बताया कि अब विधान का आधार बदलने का प्रयत्न करने का समय नहीं है, क्योंकि इस काम में हम काफी दूर बढ़ चुके हैं। श्रीमान्, मैं भी सहमत हूं कि यदि त्रुटि हुई है तो त्रुटि हमारी थी कि हम काफी सावधान नहीं रहे तथा इस बात को उचित समय पर परिषद् में नहीं रखा। जब बात इतनी देर में उठाई गई तो मसौदा-समिति के सभापति डा. अम्बेडकर से आशा नहीं कर सकता था कि वे इसे स्वीकार करने की कृपा करें।

श्रीमान्, ग्राम-पंचायत या ग्राम इकाई को विधान का वास्तविक आधार न बनाने से अत्यन्त गम्भीर स्थिति उत्पन्न हो गई थी। यह तो सबको स्वीकार करना पड़ेगा

[श्री टी. प्रकाशम्]

कि यह ढांचा ऊपर से आरम्भ हुआ है तथा नीचे तक पहुंचता है। इस विषय में डा. राजेन्द्र प्रसाद ने स्वयं जो सुझाव दिया था वह यह था कि ढांचा नीचे नींव से आरम्भ होना चाहिये तथा ऊपर जाना चाहिये था। श्रीमान्, इसी ढांचे का स्वर्गीय महात्मा गांधी ने संकेत किया था तथा लगभग तीस वर्ष तक इसके निर्माण के लिये प्रयत्न किया था। इन परिस्थतियों में यह बहुत सौभाग्य की बात है कि यह इस समय किया जाये, इसका समावेश किया जाये तथा उचित तरीके से इसे क्रियान्वित किया जाये। मैं वास्तव में श्री सन्तानम् को इस पर बधाई देता हूं कि उन्होंने इस संशोधन को इस रूप में उपस्थित किया ताकि वे सब, जिन्होंने कि संशोधन भेजे थे और जिनमें मैं भी हूं इसे मानने के लिये तैयार हो गये, क्योंकि इससे प्रत्येक प्रांत तथा समस्त भारत के लोगों को अवसर मिल जाता है कि वे इस आधार पर चल कर सारी रचना कर सकें और इस समय विधान की प्रगति में बाधा न पड़े।

श्रीमान्, इस परिषद् के योग्य मित्रों में से एक उस दिन मुझे कह रहे थे कि ''आप ग्राम-पंचायतों तथा इन सब बातों के विषय में क्यों सोच रहे हैं? बैलगाड़ियों का समय गया, अब वह कभी नहीं लौटेगा''। यह उनके विचार थे। मैं उन मित्र महोदय से कह दूं कि इस देश में जिन ग्राम-पंचायतों की स्थापना तथा निर्माण का विचार किया जा रहा है, वे बैलगाड़ियों के ग्रामों की पंचायतें नहीं होंगी। श्रीमान्, इस प्रस्ताव के अन्तर्गत जो ग्राम-पंचायतें स्थापित की जायेंगी, जो कि मानों सरकार की आज्ञानुसार स्थापित की जायेंगी, वे ऐसी ग्राम-पंचायतें होंगी जो जंगलों में काटी हुई ईंधन को किराये के रूप में कुछ धन प्राप्त करने के लिये कस्बों तथा शहरों में पहुंचाया करें। यह ग्राम-पंचायतें बैलगाड़ियों को गांव में उत्पन्न धान तथा अन्य चीजों को अपने स्वयं के लाभार्थ तथा जनता के लाभ के हेतु पहुंचाने के काम में लेगी। यह ग्राम-पंचायतें हमारे उन वीरों की भी सेवा करेंगी जो कि अब काश्मीर में युद्ध कर रहे हैं। कुछ दिन हुए मैं वही था; मैंने देखा कि युद्धस्थल में वे मित्र किस तरह से अपना काम कर रहे थे। उनमें से कुछ ने मुझे कहा कि ''श्रीमान्, जब आप देश लौटें तो कृपया ऐसी व्यवस्था करें कि खाद्य पदार्थों के मूल्य कम हो जायें तथा हमारे लोग जब रहने के लिये छोटे-छोटे स्थानों की मांग करें तो उन्हें वे दिला दिये जायें।'' इन सब चीजों में ग्राम-पंचायतें सर्वोत्तम सम्भव तरीके से सैनिक लोगों की सेवा कर सकेंगी।

यह ऐसी चीज नहीं है कि हम अपने इतिहास तथा संसार के इतिहास को भूलकर इस पर घृणा के साथ दृष्टिपात करें। हमारे देश में यह सब से प्रथम बार नहीं किया जा रहा है। इन पंचायतों को पुनः स्थापित करके हम अपने लोगों पर कृपा नहीं कर रहे हैं। जब हम सारे देश में ऐसी संस्थायें स्थापित कर देंगे, तो मैं आपको बता सकता हूं कि अन्न के दुर्भिक्ष नहीं पड़ेंगे, वस्त्र के अकाल नहीं पड़ेंगे और आजकल हमें खाद्यान्न के आयात पर जो एक अरब 10 करोड़ रुपये खर्च करने पड़ रहे हैं, वे नहीं करने पड़ेंगे, यह धनराशि देश में बच सकती है। हम वास्तविकता से बहुत दूर पहुंच गये हैं। यह ग्राम-पंचायतें अत्यन्त आश्चर्यजनक तरीके से चोरबाजारी को रोक देंगी। यदि यह ग्राम-पंचायतें ठीक प्रकार से चलाई जायें तथा स्वावलम्बन के आधार पर संगठित की जायें, जिस पर कुछ लोगों को आपत्ति हो सकती है, और यदि ग्राम की स्वशासित अंग बना दिया जाये तो इससे मुद्रास्फीति भी रोकी जा सकती है, जिसे रोकने में सरकार ज्यादा हद तक सफल नहीं हो सकी है। यह ग्राम-संस्था हमारे देश में शांति स्थापित कर देगी। आज सरकार अन्य देशों से खाद्यान्न मंगाने तथा इसका वितरण करने में यहां ऊपर से कुछ भी करती हो। खाद्यान्न साधारणतः उन साधनों के द्वारा जो कि हमारे पास केन्द्र या प्रान्तों में हैं, जनसाधारण में बांटा नहीं जा सकता। जहां तक इस मामले का सम्बन्ध है, सारी कठिनाई तत्काल दूर हो जायेगी। मैं आपको यह भी बता दूं कि हमारे देश में साम्यवाद का जो भय है—हम देख रहे हैं कि चीन में क्या हो रहा है, हमने देखा कि चेकोस्लोवेकिया में क्या हुआ और हम जानते हैं कि बर्मा में क्या स्थिति है, हम जानते हैं कि हमारे देश में ही साम्यवाद के विषय में क्या स्थिति है। यदि ग्रामों का इस प्रकार संगठन कर दिया जाये तथा उन्हें उचित रूप में चलाया जाये तो साम्यवाद को तत्काल रोका जा सकता है। हमारे लोगों के लिये साम्यवादी बनने का कोई प्रलोभन ही नहीं रहेगा और वे हमारे अपने ही आदमियों का इस प्रकार वध नहीं करते फिरेंगे जैसे कि वे करते रहे हैं। इन सब कारणों से मैं इसका समर्थन करूंगा और मैं इस बात के लिये बहुत उत्सुक हूं कि विधान के स्वीकृत होते ही इस पर सब प्रांतों में जितनी जल्दी हो सके, अमल किया जाये और मैं आज उस प्रकाश और वैभव को देख रहा हूं जो इस विधान के स्वीकार कर लिये जाने के बाद

[श्री टी. प्रकाशम्]

तथा इस ग्राम-संगठन के अस्तित्व में आ जाने के पश्चात् देश में उत्पन्न होगा।

***श्री सुरेन्द्र मोहन घोष** (पश्चिमी बंगाल : जनरल): श्रीमान्, मैं आपका आभारी हूं कि आपने मुझे अपने माननीय मित्र श्री सन्तानम् के प्रस्ताव पर अपने विचार प्रगट करने का अवसर दिया। श्रीमान्, आप देखेंगे कि मेरे नाम एक और संशोधन संख्या 991 है जो कि लगभग मेरे माननीय मित्र के इस संशोधन के समान ही है। मुझे प्रसन्नता है कि मेरे माननीय मित्र श्री सन्तानम् ने ऐसा सर्व स्वीकृत संशोधन रखा है और माननीय कानून मंत्री डा. अम्बेडकर ने इसे स्वीकार कर लिया है।

श्रीमान्, मेरे विचार में यदि हमारे विधान में इसके समान कोई प्रावधान नहीं होता, तो जहां तक करोड़ों भारतवासियों का सम्बन्ध है, यह विधान कुछ नहीं होता। एक और बात भी है, वह यह कि हजारों वर्षों से भारत में हमारे जीवन का उद्देश्य, जैसा कि विभिन्न कार्यों में व्यक्त होता था, यह था कि प्रत्येक व्यक्ति को पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त थी। यह मान लिया गया था कि प्रत्येक व्यक्ति को पूर्ण तथा अबाध स्वतंत्रता थी, किन्तु व्यक्ति को उस स्वतंत्रता का क्या करना चाहिये, इस विषय में कुछ निदेशन थे। व्यक्ति को केवल एकता के लिये काम करने की स्वतंत्रता थी। उस स्वतंत्रता से उन्हें हमारे लोगों की एकता की खोज करना है। यदि कोई व्यक्ति हमारी एकता को भंग करने के लिये कार्य करे, उसे स्वतंत्रता नहीं थी। यही सिद्धान्त अनन्तकाल से भारतीय विधान में स्वीकार किया गया था। हमारे शरीर के छिद्रों के समान प्रत्येक ग्राम को यह स्वतंत्रता थी कि वह स्वयं के विचारों को व्यक्त करे, किन्तु इसके साथ ही उस स्वतंत्रता से उन्हें भारत की एकता को स्थापित रखने तथा उसकी रक्षा करने के लिये कार्य करना होता था।

श्रीमान्, हमारी ग्रामीण जनता इस प्रणाली से इतनी परिचित है कि यदि आज हमारे विधान में इस प्रकार का कोई प्रावधान नहीं होता है तो वे इसे अपना विधान नहीं समझते; ऐसा विधान नहीं समझते जिससे वे कुछ परिचित हों, या जिसे वे

अपने ही देश का विधान कह सकें। इसीलिये, श्रीमान्, मुझे प्रसन्नता है और मैं अपने मित्र माननीय श्री सन्तानम् तथा माननीय डा. अम्बेडकर दोनों को बधाई देता हूं कि श्री सन्तानम् ने यह संशोधन पेश किया तथा डा. अम्बेडकर ने उसे स्वीकार कर लिया। श्रीमान्, मैं इसका समर्थन करता हूं।

सेठ गोविन्ददास (मध्यप्रांत और बरार : जनरल): सभापति जी, यहां पर हिन्दी में इतने कम भाषण होने लगे हैं कि हमारे दक्षिण भारत के भाइयों को समझाने के लिये अगर कोई बात होगी तब तो अब में अंग्रेजी मैं कहूंगा नहीं तो फिर से मैं हिन्दी में बोलना आरम्भ करता हूं।

माननीय डा. अम्बेडकर ने जब इस विधान को पेश करते हुये अपने भाषण में देहातों के सम्बन्ध में कुछ कहा था, तब मुझे बड़ा दु:ख हुआ था और मेरा यह ख्याल है कि इस सभा के अधिकांश सदस्यों को उनके इस कथन पर दु:ख हुआ होगा। परन्तु मुझे बड़ा हर्ष है कि अन्त में उन्होंने माननीय श्री सन्तानम् के इस सुधार को स्वीकार कर लिया। दिन भर का भूला भटका अगर रात को घर आ जाये तो उसे भूला भटका नहीं माना जाता।

मैं उस प्रान्त से आता हूं कि जिस प्रान्त में इस सम्बन्ध में शायद सबसे ज्यादा काम हुआ है। हमारे ग्राम-पंचायत, न्याय पंचायत और जनपद के कानूनों की चर्चा आज सारे हिन्दुस्तान में है। एक समय था जब वह प्रान्त बड़ा पिछड़ा प्रान्त माना जाता था, परन्तु अब समूचे देश को स्वीकार करना पड़ेगा कि कई बातों में हमारा प्रान्त छोटा होते हुये भी इस देश के अन्य प्रान्तों को रास्ता दिखाता है। और जहां तक इस ग्राम-योजना का सम्बन्ध है, वहां तक तो यह बात निर्विवाद है कि मेरे प्रान्त में इस सम्बन्ध में सबसे अधिक काम हुआ है।

यह देश बड़ा प्राचीन देश है और इस देश में ग्राम का सदा ही महत्त्व रहा है। सब प्राचीन देशों में यह बात नहीं रही। मसलन यूनान में शहरों का ग्रामों की अपेक्षा कहीं अधिक महत्त्व था। वहां पर ऐथेन्स और स्पार्टा के जो जनतंत्र थे उनका आज सारे संसार के इतिहास में महत्त्व है; परन्तु वहां पर ग्रामों का महत्त्व नहीं था। हमारे यहां तो ग्रामों का इतना महत्त्व था कि हमारे प्राचीनतम ग्रंथ उपनिषदों तक में जो कथायें आई हैं उनमें यदि एक ओर तपोवनों और ऋषियों-मुनियों के आश्रमों का वर्णन है तो दूसरी ओर ग्रामों का। कौटिल्य के अर्थ शास्त्र में भी हमारे प्राचीन ग्रामों की चर्चा है। आधुनिक इतिहासज्ञों ने भी

[सेठ गोविन्ददास]

इस बात को स्वीकार किया है, सर हेनरी मैन की ''एनशियेन्ट ला'' नामक पुस्तक में, बेडेन पावेल की ''इंडियन विलेज कम्यूनिटीज'' में, श्री बी.सी. पाल को ''फन्डामेंटल यूनिटी आफ इंडिया' में हमारे प्राचीन ग्राम संगठन का वर्णन है। मैं इस सभा के सदस्यों से इन पुस्तकों को देखने की प्रार्थना करता हूं। इससे उनको मालूम होगा कि प्राचीन समय से हमारे यहां ग्रामों का कितना महत्त्व था। मुसलमानों के राज्य-काल में भी ग्रामों का प्रधान स्थान रहा है। यह तो अंग्रेजों के राज्य के समय बेचारे ग्रामों की पूछ ताछ नहीं रही। इसका कारण था अंग्रेज राज्य। इस देश में मुट्ठी भर लोगों के समर्थन पर कायम रहा। अंग्रेजी राज्य में प्रान्तों की, जिलों की, तहसीलों की और अन्य चीजों की हमारे यहां रचना हुई। ताल्लूकेदारियों, जमींदारियों और मालगुजारियों की रचना हुई। अंग्रेजी राज्य इतने वर्ष तक इस देश पर इन थोड़े से आदमियों पर स्थित रहा।

महात्मा गांधी ने जिस प्रकार इस देश के जीवन के हर एक क्षेत्र में एक क्रांति उत्पन्न कर दी, उसी प्रकार इस सम्बन्ध में भी किया। वे ग्राम में ही निवास करने लगे थे। उन्होंने कांग्रेस के अधिवेशनों तक को ग्रामों में कराया। और आज जब हम इस प्रस्ताव को स्वीकार करते हैं तो धारा-सभा के सदस्यों को मैं उनके दिल्ली के ही एक भाषण का स्मरण दिलाता हूं, जो उन्होंने यहां पर एशियाटिक कान्फ्रेंस में दिया था। उन्होंने भिन्न-भिन्न देशों से आने वाले प्रतिनिधियों से कहा था कि यदि उनको यथार्थ में भारत के दर्शन करने हैं तो उनको देहात में जाना चाहिये, उनको शहरों में सच्चे भारत के दर्शन नहीं हो सकते। इस देश के 100 में से 80 निवासी आज भी ग्रामों में निवास करते हैं। यदि हम इस सम्बन्ध में इस विधान में ग्रामों का कोई जिक्र न करें तो हमारे लिये बड़े खेद की बात होगी।

मैं माननीय श्री सन्तानम् के इस विचार का समर्थन करता हूं और मुझे विश्वास है कि यह जो डाइरेक्टिव सब प्रान्तों को इस विधान द्वारा दिया जा रहा है, उसके कारण जिस प्रकार मध्यप्रान्त में हुआ है, उसी प्रकार का कार्य मध्यप्रान्त का अनुसरण कर शेष प्रान्त भी करेंगे और ऐसा समय आ जायेगा जब हम प्राचीन समय के अपने वैभव को फिर ग्रामों में देख सकेंगे।

***श्री वी.आई. मुनिस्वामी पिल्ले** (मद्रास : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, श्रीमान्, मेरे माननीय मित्र श्री सन्तानम् के यह संशोधन रखने से और मसौदा-समिति के सभापति के इस कथन से कि वे इसे स्वीकार करने जा रहे हैं, ग्रामों में रहने वाले अपेक्षाकृत कम सौभाग्यशाली लोगों के प्रति सार्वभौम निकाय के वास्तविक विचार प्रगट होते हैं मेरे माननीय मित्र श्री प्रकाशम् ने मान्य नेताओं, राजेन्द्र प्रसाद तथा महात्मा गांधी, के वक्तव्य की चर्चा की है। किन्तु हम जानते हैं कि यह तथ्य है कि ग्राम नष्ट-भ्रष्ट अवस्था में हैं और यदि कोई सुविधायें या स्वशासन देना है तो इस सार्वभौम निकाय द्वारा ग्रामों को दिया जाना चाहिये। उस दिन जब मैंने विधान के मसौदे पर वक्तृता दी थी तब मैंने कहा था कि देहाती क्षेत्रों को स्वशासन देने का कोई प्रावधान नहीं है। अब इस संशोधन के अन्तर्गत हम ग्रामों को आत्म-भरित बनाने तथा वहां स्वशासन स्थापित करने के लिये कुछ शक्ति प्रदान करते हैं। श्रीमान्, मुझे विश्वास है कि समस्त भारत के सात लाख ग्राम विधान में इस संशोधन के प्रावधान का स्वागत करेंगे। श्रीमान्, देहाती क्षेत्रों से जो आगम (मालगुजारी) प्राप्त होते हैं, उनसे ही नगरों का निर्माण तथा वहां सब सुविधायें देना सम्भव हो सका है। किन्तु जो मनुष्य करों के रूप में आगम देता है उसे मूल सुविधायें भी प्राप्त नहीं हो सकी है। मैं अनुभव करता हूं कि इस संशोधन को स्वीकार करके हम ग्रामों के पुनर्निर्माण का काफी कार्य करेंगे, जो कि शताब्दियों से नष्ट-भ्रष्ट होने दिये गये हैं। यदि छोटी-छोटी चीजों की चिन्ता की जाये, तो बड़ी चीजें स्वयं ठीक हो जायेंगी। अत: मैं अनुभव करता हूं कि इस संशोधन को स्वीकार करके हम अपने ग्रामों के पुनर्निर्माण का काफी कार्य कर रहे हैं, जिन्हें कि आज इस प्रकार के पुनर्निर्माण की अत्यावश्यकता है।

***डा. वी. सुब्रह्मण्यम्** (मद्रास : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, जब भारत माता अपने विधान को जन्म देगी, तब यदि इस विधान में कोई चेतन तत्व होगा तो वह यही ग्राम-पंचायत-संशोधन होगा जिसे मेरे माननीय मित्र थी सन्तानम् ने प्रस्तुत किया है। यह सुविदित सत्य है कि आज हमारी राजनीतिक व्यवस्था में यह चेतन-तत्व-ग्राम-पंचायत है, इसी से आज भारत संसार में स्वशासित इकाई के रूप में खड़ा है। आज यदि हम सब प्रकार से देश को प्रबल और स्वावलम्बी बनाना चाहते हैं तो हमारे विधान में अर्थात् निदेशक सिद्धान्तों में यह खंड होना अत्यावश्यक है।

हां, स्वावलम्बन के विषय में कुछ मतभेद है। जब हम किसी ग्राम के

[डा. वी. सुबह्मण्यम्]

स्वावलम्बी होने की बात करते हैं तो मैं उसका यह अर्थ समझता हूं। मान लीजिये एक ग्राम में मूंगफली अधिक होती है, तो वह उसे निर्यात करे चाहे उसे ग्राम के लोगों की आवश्यकता के लिये डालडा तथा अन्य पदार्थ मंगाने पड़ें। उसे स्वावलम्बी बताने से हमारा यही आशय है कि वह जो कुछ सामग्री उत्पन्न कर सकता है वह करे तथा अन्यावश्यक वस्तुएं पड़ौस के ग्रामों से आयात करे। यह है मेरी व्याख्या। किन्तु यह ऐसी चीजें है जिन्हें ग्राम-पंचायतें ही सविस्तार से निश्चय करेंगी।

स्पष्ट है कि जहां तक इस संशोधन का सम्बन्ध है इस विषय में दो मत नहीं हो सकते। यह संशोधन स्वीकृत होना ही चाहिये और हमारे भावी विधान में ग्रामों को अत्यधिक शक्तियां दी जानी चाहियें। वास्तव में हम यह भी नहीं जानते कि हमारे देश में कितने बढ़ई हैं। यदि ग्राम पंचायतें हों तो हमें केवल उनके उल्लेखों को देखने की आवश्यकता है, और हम प्रत्येक ग्राम में बढ़इयों की संख्या निकाल सकते हैं। इन पंचायतों से बहुत लाभप्रद प्रयोजन सिद्ध होगा। यह खंड अत्यावश्यक है और मैं इस संशोधन का समर्थन करता हूं।

***श्री सत्यनारायण सिन्हा** (बिहार : जनरल): श्रीमान्, हम काफी पर्यालोचन कर चुके हैं तथा श्री भारती के बाद मैं बहस बंद करने का प्रस्ताव करना चाहूंगा।

***श्री एल. कृष्णास्वामी भारती** (मद्रास : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, श्रीमान्, मैं माननीय श्री सन्तानम् को बधाई देता हूं कि उन्होंने यह संशोधन रखा तथा डा. अम्बेडकर को भी बधाई देता हूं कि उन्होंने इसे स्वीकार कर लिया। मैं यह अवश्य कहूंगा कि मैं इस संशोधन से पूर्णतया संतुष्ट नहीं हूं, और इसका सीधा कारण है कि आज भी, वर्तमान विधान के अंतर्गत भी, मेरे विचार में प्रांतीय सरकारों को ग्राम-पंचायतें बनाने तथा उन्हें स्वशासित अंगों के रूप में चलाने के पर्याप्त अधिकार हैं। किन्तु इस संशोधन में जितनी भी हद तक यह जाता है, उससे मुझे अपना संतोष अवश्य प्रगट करना चाहिये। यह स्मरण रखना चाहिये कि यह निदेशक सिद्धांतों में ही है और मुझे कोई कारण दिखाई नहीं देता कि श्री सन्तानम् ने स्वावलम्बन के विचार को क्यों स्वीकार नहीं किया। उन्होंने इस सिद्धान्त को स्वीकार

न करने के जो कारण बताये हैं, वे जरा भी संतोषजनक नहीं है। वास्तव में दो तीन माननीय सदस्यों—श्री रंगा, श्री अनंतशयनम् आयंगर तथा श्री प्रकाशम्—ने इन विचारों के संशोधन भेजे हैं। श्री अनंतशयनम् आयंगर के संशोधन में कहा गया है कि राजनीतिक तथा आर्थिक शक्तियों के प्रभाविक विकेन्द्रीकरण की अतीव आवश्यकता है। आखिर इस संशोधन द्वारा उन्हें केवल राजनीतिक स्वतंत्रता दी जा रही है। आर्थिक स्वतंत्रता के बिना राजनीतिक स्वतंत्रता व्यर्थ है। निदेशक सिद्धान्तों में निहित आशय इस बात पर जोर देता है कि हम देश को किस प्रकार चलाना चाहते हैं। इसी कारण हमें यह स्पष्ट कर देना चाहिये कि आर्थिक प्रजातंत्र का विकेन्द्रीकरण आवश्यक हैं और इसके लिये आर्थिक शक्ति का विकेन्द्रीकरण आवश्यक है। गांधीजी ने इस पहलू पर जोर दिया था। यदि भारत को प्रजातंत्र के रूप में प्रकार्य करना है, तो राजनीतिक तथा आर्थिक क्षेत्र दोनों में विकेन्द्रीकरण सर्वथा आवश्यक है। वास्तव में एशियाई सम्बन्ध सम्मेलन में भाषण देते हुए महात्माजी ने दिल्ली नगर की ओर संकेत करते हुए कहा था:

> ''यह भारत नहीं है। आप लोग दिल्ली को देख रहे हैं—यह भारत नहीं है। ग्रामों में जाइये; वह भारत है, वहां भारत की आत्मा निवास करती है।''

अत: मैं नहीं जानता कि उन्हें 'स्वावलम्बन' पर शर्म क्यों आती है? महात्माजी ने इसे अच्छी तरह समझा दिया है, और यदि आवश्यक हो तो मैं उनके भाषणों में से कुछ शब्द कहना चाहूंगा।

***माननीय श्री के. सन्तानम्:** क्या मैं माननीय सदस्य को यह बता दूं कि स्वशासन केवल राजनीतिक ही नहीं है। यह आर्थिक या आध्यात्मिक हो सकता है।

***श्री एल. कृष्णास्वामी भारती:** मैं यह बात अच्छी तरह समझता हूं और यही कारण है कि इसे स्पष्ट कर देना चाहिये। यदि स्वशासन में यह सम्मिलित है तो यह अत्यधिक अच्छा है कि हम इसे स्पष्ट कर दें क्योंकि यह स्पष्टीकरण अत्यावश्यक है। मैं 'स्वावलम्बन' शब्द को गांधी जी के अर्थों में अत्यधिक पसंद करूंगा। स्मरण रहे सब मामलों में स्वावलम्बन नहीं, किन्तु जीवन की अत्यावश्यक चीजों में, यथासम्भव भोजन तथा वस्त्र में स्वावलम्बन। यही गांधीजी ने कहा था। इसका अर्थ सम्पूर्ण स्वतंत्रता नहीं है। श्रीमान्, मैं आपकी अनुमति चाहता हूं कि

[श्री एल. कृष्णास्वामी भारती]

महात्माजी के लेखों में कुछ महत्त्वपूर्ण अंश पढ़ कर सुनाऊं जिससे कि मामला साफ हो जाये। गांधीजी ने लिखा था:

> ''ग्राम स्वराज्य से मेरा यह आशय है कि ग्राम एक पूर्ण प्रजातंत्र हो, जो अपनी मूल आवश्यकताओं के लिये अपने पड़ौसियों पर निर्भर न करे, और फिर भी कई अन्य आवश्यकताओं के लिये वे परस्पर निर्भर हों जिनके लिये निर्भरता आवश्यक हो।''

एक माननीय सदस्य ने कहा था: ''अच्छा, हम क्या कर सकते हैं? कुछ ग्राम केवल धान उत्पन्न करते हैं, वे स्वावलम्बी नहीं बन सकते''। क्या यह ऐसी असम्भव बात है? गांधीजी ने इस बात पर जोर दिया था कि वे यह सुझाव नहीं दे रहे थे कि ग्राम को इन सब बातों में स्वतंत्र होना चाहिये, किन्तु कुछ बातों में आपको आत्म विश्वास होना चाहिये। आधारभूत भावना यह थी कि काम नहीं तो भोजन नहीं। अब ग्राम्य-जनता सोचती है कि यह स्वराज्य सरकार है अत: खादी तथा भोजन आकाश से टपक पड़ेंगे। गांधीजी का स्वावलम्बन का यह आशय था: ''सरकार से कुछ आशा मत करो; आपके हाथ पैर हैं काम करो; बिना काम आपको भोजन नहीं मिलेगा। यदि आप काम नहीं करेंगे तो आपको भोजन-वस्त्र नहीं मिलेगा''। यह विकेन्द्रीकरण तथा आर्थिक प्रजातंत्र का मूल भाव है। और यदि ग्राम्य-जनों में यह भावना रखनी है तो हमें इसे यहां रख देना चाहिये और उन्हें स्वावलम्बन के विषय में बता देना चाहिये कि 'सरकार से कुछ आशा मत करो। सरकार क्या है? आखिर आप ही सरकार हैं। आपको काम करना चाहिये, आपको उत्पादन करना चाहिये। इन कारखानों पर निर्भर न रहें। अपना चरखा चलाते रहो, अपना अन्न स्वयं उपजाओ''। यही स्वावलम्बन और विकेन्द्रीकरण तथा आर्थिक प्रजातंत्र का मूल अभिप्राय है।

महात्माजी ने कहा था:

> ''ग्राम स्वराज्य से मेरा यह आशय है कि ग्राम एक पूर्ण प्रजातंत्र हो जो अपनी मूल आवश्यकताओं के लिये अपने पड़ौसियों पर निर्भर न करे और फिर भी कई अन्य आवश्यकताओं के लिये वे परस्पर निर्भर हों जिनके लिये निर्भरता आवश्यक हो। अत: प्रत्येक ग्राम का यह प्रथम कार्य होगा कि वह अपने अन्न की फसल उपजायें और अपने वस्त्र के लिये कपास उत्पन्न करें। उनके पास अपने ढोरों

के लिये चरागाह होना चाहिये, बड़ों और बच्चों के लिये प्रमोदस्थान तथा क्रीड़ास्थल होना चाहिये। तब यदि और भूमि उपलब्ध हो तो धन लाभार्थ फसलें बोनी चाहियें, किन्तु गांजा, तम्बाकू, अफीम तथा एतद्सम फसलें नहीं बोनी चाहियें। ग्राम में एक ग्राम-नाट्यशाला, पाठशाला तथा सार्वजनिक सभा-मंडल होना चाहिये। ग्राम के पानी की नल भी होनी चाहिये जिससे कि शुद्ध जल प्राप्त हो सके। यह नियंत्रित कूपों तथा सरोवरों द्वारा किया जा सकता है। शिक्षा आधारभूत (बुनियादी) पाठ्यक्रम के अंत तक अनिवार्य होनी चाहिये। यथासम्भव प्रत्येक कार्य सहकारी आधार पर चलाया जायेगा। आजकल के समान जातियां नहीं होंगी, जिनमें क्रमशः अस्पृश्यता है। ग्राम्य जनता की शक्ति का आधार अहिंसा तथा सत्याग्रह एवं असहयोग की कला होगी।

(इसी समय उपाध्यक्ष ने समयावधि का संकेत करने के हेतु घंटी बजा दी।)

श्रीमान्, मेरे विचार में महात्माजी ने जीवन के विषय में जो लिखा था उसकी केवल कुछ ही और पंक्तियां है। आपकी अनुमति से मैं उन्हें पूरी करना चाहता हूं:

> ''ग्राम-रक्षकों की अनिवार्य सेवा होगी, जिसमें ग्राम की पंजी (रजिस्टर) के अनुसार क्रमशः लोगों को चुना जायेगा। ग्राम का शासन पांच जनों की पंचायत द्वारा चलाया जायेगा। यह पंचायत प्रतिवर्ष प्रौढ़ ग्रामीणों द्वारा चुनी जायेगी जिनमें ऐसे नर और नारी होंगे जो न्यूनतम प्रदिष्ट योग्यतायुक्त हों।''

यह गांधीजी के विचारों का आशय है और इसलिये मेरी सम्मति में यह अत्यावश्यक है कि यह सार्वभौम निकाय महात्मा गांधी के मूल सिद्धान्तों को घोषित करें तथा उन पर अपने विचार प्रगट करें। उनका अभिप्राय यह था विकेन्द्रीकरण होना चाहिये तथा ग्राम को आर्थिक इकाई के रूप में प्रकार्य करना चाहिये। हां, माननीय श्री सन्तानम् ने कह दिया है कि यह भी सम्मिलित है। मैं केवल यही चाहता था कि यह अधिक स्पष्ट कर दिया जाये ताकि महात्माजी की आत्मा को अत्यधिक हर्ष हो। उन्होंने कहा था कि यदि ग्राम मर जायेंगे तो भारत मर जायेगा, यदि ग्राम जीवित रहेंगे तभी भारत जीवित रह सकता है।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** जैसा कि मैं कह चुका हूं, मैं संशोधन को स्वीकार करता हूं। मुझे और कुछ आगे नहीं कहना है।

(एक माननीय सदस्य बोलने के लिये खड़े हुए।)

***उपाध्यक्ष:** इस विषय में मेरा निर्णय अंतिम है। मुझे अभी तक कोई ऐसा सदस्य नहीं दिखाई दिया जिसने श्री संतानम् के प्रस्ताव का विरोध किया हो इसकी प्रशंसा करने के विभिन्न तरीके हो सकते हैं, किन्तु इसकी तह में तथा आधारत: यह वक्तृतायें संशोधन की प्रशंसा के अतिरिक्त कुछ नहीं है।

प्रश्न यह है:

''कि अनुच्छेद 31 के बाद निम्न नया अनुच्छेद जोड़ दिया जाये:

'31-ए राज्य ग्राम-पंचायतों का संगठन करने के लिये कार्यवाही करेगा और उन्हें स्वशासन के अंगों के रूप में प्रकार्य करने देने के लिये उन्हें यथावश्यक शक्ति एवं प्राधिकार प्रदान करेगा।' ''

प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

***उपाध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

''कि नया अनुच्छेद 31-ए विधान का भाग हो।

प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

अनुच्छेद 31-ए विधान में जोड़ दिया गया।

तत्पश्चात् परिषद् मंगलवार, ता. 23 नवम्बर सन् 1948 के प्रात 10 बजे तक के लिये स्थगित हुई।